Digitized by eGangotri

पितामह

रवीन्द्रनाथ टैगोर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पितामह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पितामह

रवीन्द्रनाथ टैगोर

अनुवादक
ममता बिस्वास

नया साहित्य केन्द्र
दिल्ली-94

Naya Sahitya Kendri
Delhi

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

SPS Central Library
Acc No. ....
Srinagar

891.433
B54P

ISBN : 81-88285-13-7

प्रकाशक : नया साहित्य केन्द्र
ई-344, सोनिया विहार, दिल्ली-110094

प्रथम संस्करण : 2011

मूल्य : 150.00

मुद्रक : एस॰ एन॰ प्रिंटर्स
एम-72, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

PITAMAH
Translation by Mamta Biswas

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सूची

1.	माल्यदान	7
2.	हैमन्ती	21
3.	वैष्णवी	35
4.	अन्तिम रात	48
5.	पहला नम्बर	63
6.	तिनके का संकट	79
7.	पड़ोसिन	82
8.	पितामह	87

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

माल्यदान

सुबह का गुलाबी जाड़ा। दोपहर में हवा कुछ गर्म हो उठी और दक्षिण से बहने लगी।

यतीन जिस बरामदे में बैठा था—वहां से बगीचे के एक कोने में एक ओर एक कटहल और दूसरी ओर शिरीष वृक्ष के बीच के अवकाश से बाहर का मैदान नजर आता है। वह सुनसान मैदान फागुन की धूप में धू-धू जल रहा था। उसी के एक किनारे से एक कच्चा रास्ता निकल गया है। उसी रास्ते से लदी-खाली बैलगाड़ियां धीमी गति से गांव की ओर लौट रही थीं, गाड़ीवान सिर पर अंगोछा डाले मन की मौज़ में बेमतलब ही गाना गाते जा रहे थे।

ठीक इसी समय पीछे से एक नारी का सहास्य कण्ठ स्वर सुनायी पड़ा, "क्यों यतीन, पूर्वजन्म की किसी की बात तो नहीं सोच रहे हो?"

यतीन बोला, "क्यों री पटल, क्या मैं ऐसा ही अभागा हूं कि कुछ सोचने के लिए पूर्वजन्म को लेकर घसीटना पड़ेगा।"

आत्मीय-स्वजनों में पटल नाम से परिचित वह लड़की बोल उठी, "ज्यादा झूठी तारीफ न करो। तुम्हारे इस जन्म की तो सारी खबर में रखती हूं महाशय! छीः-छीः! इतनी उमर हो गयी फिर भी एक साधारण-सी बहू घर में न ला सके। हम लोगों का वह जो धना माली है उन उसके भी एक बीवी है—उसके साथ दोनों बेला झगड़ते हुए वह सारे मोहल्ले को बता देता है, उसके भी एक अदद बीवी है और तुम मैदान की ओर तकते हुए ऐसा भाव दिखा रहे हो, जैसे किसी चन्द्रमुखी का ध्यान करने बैठे हो, तुम्हारी यह सब चालाकी क्या मैं नहीं समझती—यह केवल लोगों को दिखाने का ढोंग भर है। देखो यतीन, जाने-पहचाने ब्राह्मण को जनेऊ की जरूरत नहीं पड़ती। हम लोगों का वह धना तो किसी दिन विरह का बहाना करके मैदान की ओर ऐसे तकता नहीं रहता, लम्बी जुदाई के दिनों में भी पेड़ तले खुरपी हाथ में ले उसे दिन बिताते देखा है, लेकिन उसकी आंखों में तो कभी वैसी खुमारी नहीं देखी और एक तुम हो कि जिस महाशय ने कभी सात जन्म में औरत का मुंह तक नहीं देखा—केवल अस्पताल में मुर्दे की चीरफाड़ और पुस्तकें रट-रटाकर उमर गुजार दी। तुम ऐसी दुपहरी में इस तरह आकाश की ओर भरी आंखों से क्यों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तकते रहते हो। नहीं, यह सब फिजूल की चालाकी मुझे अच्छी नहीं लगती। मेरी देह में आग लग जाती है।"

यतीन हाथ जोड़कर बोला, "बस, बस, रहने दो। मुझे अधिक शर्मिन्दा न करो। तुम लोगों का धना ही धन्य है। उसी के आदर्श पर मैं चलने की चेष्टा करूंगा और अब कुछ न बोलो, कल सवेरे उठते ही जिस लकड़ी बीनने वाली लड़की का मुंह देखूंगा उसी के गले में माला डाल दूंगा—तुम्हारा यह धिक्कार मुझसे अब सहा नहीं जाता।"

पटल—तो बात तय रही न?

यतीन—हां रही।

पटल—तो चलो।

यतीन—कहां चलूं?

पटल—चलो तो सही।

यतीन—नहीं, नहीं, जरूर कोई शरारत तुम्हें सूझी है। मैं यहां से इस वक्त हिलने का नहीं।

पटल—अच्छा, तब यहीं बैठे रहो—कहकर वह तेजी से चली गयी।

अब इनका परिचय दिया जाय। यतीन और पटल की उम्र में बस एक ही दिन का अन्तर है। पटल यतीन से एक दिन बड़ी है लेकिन यतीन उसके प्रति किसी प्रकार का सामाजिक सम्मान देने-दिखाने को राजी नहीं। दोनों चचेरे भाई-बहन हैं। बचपन से एक साथ खेलते आये हैं। उसे 'दीदी' कहकर नहीं पुकारता, इस बात पर पटल ने यतीन के नाम से बचपन में पिता-चाचा से कई-कई बार शिकायतें कीं, लेकिन किसी भी शासन-विधि द्वारा कोई फल नहीं हुआ—एकमात्र छोटे भाई के लिए भी उसका 'पटल' नाम छूटा नहीं।

पटल अच्छी-खासी मोटी-ताजी, गोल-मटोल और हंसमुख लड़की है—विनोद-रस से परिपूर्ण। उसके कौतुक और हास्य का दमन कर सके, समाज में ऐसी कोई शक्ति नहीं। अपनी सास के सामने भी वह किसी दिन गम्भीर बनी न रह सकी। पहले-पहल इस बात को लेकर बड़ी हाय तोबा मची, लेकिन अन्त में सभी को हार मानकर कहना पड़ा—उसके यही ढंग हैं। इसके बाद तो ऐसा हुआ कि पटल की बेधड़क प्रफुल्लता के आघात से गुरुजनों का गाम्भीर्य भी धूलिसात् हो गया। पटल अपने आप-पास कहीं किसी के भी मन पर भार, चेहरे पर उदासी या दुश्चिन्ता नहीं सह पाती—ढेरों गपशप, हंसी और मज़ाक से उसके चारों ओर की आबोहवा जैसे किसी विद्युत् शक्ति से बोझिल हुई रहती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पटल के पति हरकुमार बाबू डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। उनकी बिहार-अंचल से बदली होकर कलकत्ते के आबकारी-विभाग में नियुक्ति हुई। प्लेग के भय से बाली में एक उद्यान-गृह किराये में लेकर रहते, वहीं से कलकत्ते आया-जाया करते। आबकारी के मामले में उन्हें अक्सर ही दौरे पर देहात का चक्कर लगाना होगा। इससे गांव से मां और दो-एक स्वजनों को लाने की सोच रहे हैं। इसी बीच डॉक्टरी में अभी-अभी उत्तीर्ण, ख्याति और सम्पत्ति से हीन यतीन बहन के निमंत्रण पर हफ्तेभर के लिए वहां आ पहुंचा।

कलकत्ते की गली से होकर पहली बार पेड़-पौधों के बीच आकर यतीन छायामय निर्जन बरामदे में फागुन की अलस दुपहरिया में अलसाया बैठा था। तभी पूर्व-कथित यह उपद्रव आरम्भ हुआ। पटल के चले जाने पर फिर कुछ देर के लिए निश्चिन्त हो वह हाथ-पांव फैलाकर खूब आराम से बैठा—लकड़ी बीनने वाली लड़की के प्रसंग से बचपन में सुनी काल्पनिक कहानियों के गली-कूचे में उसका मन चक्कर काटने लगा।

इसी समय पटल की हास्यमिश्रित कण्ठकाकली से वह चौंक पड़ा।

पटल ने किसी एक लड़की का हाथ पकड़े वेग से खींचते हुए यतीन के सामने ला खड़ा किया, कहा, "ओ बिन्नी!"[1]

लड़की बोली, "क्या है, दीदी?"

पटल ने कहा, "मेरा यह भाई कैसा है, देख तो भला।"

लड़की निःसंकोच यतीन को देखने लगी। पटल बोली, "क्यों, अच्छा है न देखने में?"

लड़की गम्भीर भाव से विचार करती सिर हिलाकर बोली, "हां, अच्छा है।"

यतीन लाज हो चौकी छोड़ते हुए उठकर बोला, "ओह पटल, यह क्या बचपना है!"

पटल बोली, "मैं बचपना कर रही हूं या तुम सयानापना कर रहे हो। लगता है तुम्हारा उम्र का कोई अता-पता ही नहीं।"

यतीन वहां से भागा। पटल उसके पीछे भागते-भागते बोली, "ओ यतीन, तुम्हें डर नहीं, कोई डर नहीं। अभी गले में माला डालने का वक्त नहीं आया—फागुन-चैत में वैसे भी कोई लगन नहीं—अभी हाथ में समय है।"

---

1. मूल में लड़की का नाम 'कुड़ानि'—'कुड़ान' (बाङ्ला) = बटोरना है, रास्ते पर जो लड़की-गोबर आदि बटोरती फिरती है वह 'कुड़ानि'। हिंदी में इसका समानार्थ किया गया 'बिन्नी' अर्थात् लकड़ी आदि बीनने वाली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पटल जिसे बिन्नी कहकर बुलाती है वह लड़की तो हैरान रह गयी। उसकी उम्र सोलह होगी, छरहरी देह, चेहरे की सुन्दरता के बारे में अधिक कुछ कहने को नहीं, हां इतना जरूर है कि उसके चेहरे पर एक तरह की असामान्यता है, जिसे देखने पर वन की हरिणी का स्मरण हो आता है। पंडिताऊ भाषा में उसे निर्बुद्धि कह सकते हैं लेकिन वह बुद्धूपना नहीं है, वह बुद्धिवृत्ति का अपरिस्फुरण मात्र है, इसने बिन्नी के चेहरे की सुन्दरता को...बहुत न चाहते हुए भी एक विशिष्टता प्रदान की है।

शाम को हरकुमार बाबू कलकत्ते से लौटे तो यतीन को देखकर बोले, "अरे! यतीन, तुम आये हो, बड़ा अच्छा हुआ। तुम्हें थोड़ी डॉक्टरी करनी होगी। पश्चिम में रहते हुए, अकाल के दौरान हमें एक लड़की मिली जिसे हम पाल रहे हैं—पटल उसे बिन्नी कहकर बुलाती है। अपने मां-बाप के साथ यह लड़की हमारे बंगले के पास पेड़ के नीचे पड़ी हुई थी। खबर पाकर जब वहां पहुंचे तो पाया उसके मां-बाप मर गये हैं, लड़की में प्राण मात्र शेष है। पटल ने बड़ी सेवा-जतन से उसे बचाया है। इसकी जाति के विषय में कोई कुछ जानता नहीं—उसे लेकर किसी की आपत्ति पर ही पटल कहती है, "वह तो द्विज है; एक बार मरकर अबकी हमारे घर में जन्म लिया है, उसकी पुरानी जाति कहां धुल-पूछ गयी है।" पहले-पहल लड़की ने पटल को मां कहकर बुलाना शुरू किया था; पटल ने उसे धमकाकर कहा, "खबरदार, मुझे मां मत कहना, मुझे दीदी कहना।"

पटल का कहना है, " 'इतनी बड़ी लड़की के मां कहने पर अपने आपको वह बूढ़ी समझने लगेगी।' शायद अकाल के लगातार उपवासों या अन्य कियी कारण से रह-रहकर उसके शूल-पीड़ा-सी उठती रही है। असल में बात क्या है, तुम्हें अच्छी तरह परीक्षा कर देखनी होगी। अरे ओ तुलसी! बिन्नी को जरा बुला तो ला।"

बिन्नी चोटी गूंथते-गूंथते अधसंवरी चोटी पीठ पर लटकाये हरकुमार बाबू के कमरे आ पहुंची और अपनी हिरणी जैसी दृष्टि दोनों पर डाले, ताकती खड़ी रही।

यतीन को हिचकिचाते देख हरकुमार ने उससे कहा, "तुम तो व्यर्थ का संकोच कर रहे हो यतीन। यह देखने भर को बड़ी दीखती है पर है कच्चे नारियल-सी, उसके भीतर केवल तरल पानी छलक रहा है—अभी तक सख्त गिरी का लेशमात्र नहीं। वह कुछ भी नहीं समझती—तुम इसे नारी समझने का भ्रम नहीं करना, यह तो वन की हिरणी है।"

यतीन अपना डॉक्टरी कर्त्तव्य पूरा करने में लग गया—बिन्नी ने जरा भी संकोच प्रकट नहीं किया। यतीन बोला, "शरीर यंत्र में तो कोई विकार दिखाई नहीं दिया।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पटल चट से कमरे में घुसी और बोली, "हृदय यंत्र में भी कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है। इसकी परीक्षा करना चाहोगे क्या?"

यह कहकर बिन्नी के पास जा उसकी ठोड़ी स्पर्श कर बोली, "अरी बिन्नी। मेरा यह भाई तुझे पसन्द आया?"

बिन्नी सिर हिलाकर बोली, "हां।"

पटल बोली, "तू मेरे भाई से ब्याह करेगी?"

उसने फिर सिर हिलाकर कहा, "हां।"

पटल और हरकुमार बाबू दोनों हंस पड़े। बिन्नी मजाक के मर्म को समझ न पायी और उनकी नकल उतारती अपने मुख को हंसी से भरकर तकती रही।

यतीन शर्म से लाल हो गया—हड़बड़ाकर बोला, "ओह पटल! तुम बड़ी ज्यादती कर रही हो—यह बड़ा अन्याय है। हरकुमार बाबू, आप भी पटल को बहुत अधिक बढ़ावा देते रहे हैं।"

हरकुमार बोले, "नहीं तो मैं भी उसके पास से प्रश्रय की प्रत्याशा कैसे कर सकता हूं। बात यह है यतीन कि बिन्नी को तुम जानते नहीं इसलिए इतने हैरान हो रहे हो। मालूम होता है तुम लज्जा करके बिन्नी को भी लज्जा करना सिखाओगे, उसे ज्ञान वृक्ष का फल मत चखाना। हम सब उसके बहाने मजाक कर रहे हैं—तुम यदि बीच में ही गाम्भीर्य दिखाओगे तो यह उसके लिए एक असंगत-सी बात होगी।"

पटल बोली, "इसीलिए तो यतीन के साथ मेरी कभी पटी नहीं, बचपन से तो बस झगड़ा ही होता रहा है—वैसे यह बड़ा गम्भीर है।"

हरकुमार ने कहा, "ऐसा करते हुए लगता है झगड़ा करने का तुम्हारा एक अभ्यास-सा हो गया है—भाई तो खिसक गये अब..."

पटल बोली, "फिर झूठ! तुम्हारे साथ झगड़ने में कोई मजा नहीं—मैं कोशिश भी नहीं करती।"

हरकुमार ने कहा, "मैं शुरू में ही हार जो मान लेता हूं।"

पटल बोली, "बड़ी बहादुरी दिखाते हो। शुरू में हार न मानकर अंत में हार मानते तो मैं कितनी खुश होती।"

रात में सोने के कमरे में दरवाजे-खिड़की खोलकर यतीन बहुत बातें सोचता रहा। जिस लड़की ने अपने मां-बाप को भूख से मरते देखा है उसके जीवन पर कितनी भयानक छाया पड़ी होगी। इस निदारुण घटना से वह कितनी सयानी हो उठी है—उसे लेकर भला मजाक करना चाहिए। विधाता ने दया कर उसकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बुद्धिवृत्ति पर एक आवरण डाल दिया है—यदि यह आवरण हट जाए तब अदृष्ट की रुद्र-लीला का कैसा भयंकर चिह्न प्रकट हो पड़ेगा। आज मध्याह्न में पेड़ों के अन्तराल से यतीन जब फागुन के आकाश को देख रहा था, दूर से ही, कटहल फूल की सुगन्ध ने मृदुतर हो उसकी घ्राण शक्ति को आविष्ट कर रखा था, तब उसके मन ने माधुर्य की कुहेलिका में सारे जगत को आच्छन्न देखा था; इस बुद्धिहीन बालिका ने अपनी हिरणी की-सी आंखों द्वारा उस सुनहली कुहेलिका को छिन्न-भिन्न कर डाला है; फागुन के इस कूजन-गुंजन मर्मर के पीछे जो संसार क्षुधा तृष्णा से आतुर दुःख की कठिन देह लेकर विराट मूर्ति धारण किये खड़ा है, आज यवनिका के ऊपर उठते ही शिल्प माधुर्य के अन्तराल से स्पष्ट दिखाई दिया। दूसरे दिन शाम के समय बिन्नी के वही दर्द उठा। पटल ने जल्दी से यतीन को बुलवा भेजा। यतीन ने आकर देखा, कष्ट से बिन्नी के हाथ-पांव ऐंठ रहे थे। देह निस्पन्द थी। यतीन ने दवा मंगवाने के लिए आदमी भेज बोतल में गरम पानी लाने का आदेश दिया।

पटल बोली, "बड़े भारी डॉक्टर बने हैं, पैरों में जरा गरम तेल की मालिश क्यों नहीं कर देते? देख नहीं रहे तलवे बर्फ जैसे सर्द हो गये हैं।"

यतीन बिन्नी के पैरों के तलवों में जोर से गरम तेल की मालिश करने लगा। चिकित्सा के चलते रात काफी हो गयी। हरकुमार कलकत्ते से लौटकर लगातार बिन्नी के बारे में पूछते रहे। यतीन ने समझा, शाम के समय काम से लौटकर पटल की अनुपस्थिति में हरकुमार बाबू का काम चल नहीं रहा है—बार-बार बिन्नी की खबर लेने का अर्थ यही है। यतीन बोला, "हरकुमार बाबू परेशान हैं; पटल तुम जाओ।"

पटल बोली, "दूसरे की दुहाई तो देनी ही होगी। कौन परेशान है, यह मैं खूब समझती हूं। मेरे जाने से ही अब तुम्हें मुक्ति मिलेगी। ऐसे तो बात-बात में मारे लाज के चेहरा लाल हो जाता है—तुम्हारे पेट में इतनी बातें छिपी हैं, इसे भला कौन समझेगा?"

यतीन ने कहा, "अच्छा, दुहाई तुम्हारी। तुम यहीं पड़ी रहो। मुझे बचाओ—तुम्हारा मुंह बन्द रहने से ही मेरी जान बची रहेगी। मैंने गलत समझा था—हरकुमार बाबू शायद शांति से ही हैं, ऐसा सुयोग उन्हें हमेशा नहीं मिलता।"

बिन्नी को तनिक आराम मिला। उसके आंखें खोलने पर पलट बोली, "मेरी आंखें खुलवाने के लिए तेरे दूल्हे ने आज बड़ी देर तक तेरे पांव पकड़कर मिन्नतें कीं—क्या इसीलिए आज तूने इतनी देर की? छीः-छीः! अब उठ और उनके चरणों की धूलि ले।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिन्नी ने कर्त्तव्य बोध से उसी समय गम्भीर श्रद्धाभाव के साथ यतीन के चरणों की धूली ली। यतीन तेज कदमों से कमरे से बाहर चला गया।

उसके दूसरे ही दिन से यतीन पर भलीभांति हमला शुरू हुआ। यतीन खाने बैठता तो बिन्नी आ जाती और मुस्कराते चेहरे से पंखा झलते हुए मक्खी उड़ाने लग जाती। यतीन घबराकर बोल उठता, "रहने दो, रहने दो, जरूरत नहीं।" बिन्नी इस निषेध से विस्मित हो मुख फेरकर पीछे के कमरे की ओर एक बार ताकती और उसके बाद फिर से पंखा डुलाने लगती। यतीन अन्तरालवर्तिनी को लक्ष्य कर बोल उठता, "पटल, तुम यदि इस प्रकार परेशान करोगी तो मैं खाऊंगा नहीं—यह लो, मैं उठ चला।"

यह कहकर उठने का उपक्रम करते ही बिन्नी ने पंखा फेंक दिया। यतीन ने बालिका के नादान भोले चेहरे पर तीव्र वेदना की रेखा देखी; उसी क्षण अनुतप्त हो वह दुबारा बैठ गया। बिन्नी कुछ समझती नहीं, वह शर्माती नहीं, वेदना का अनुभव नहीं करती, यह बात यतीन भी विश्वास करने लगा था। लेकिन उसने क्षणभर में पाया कि सब नियमों के ही व्यतिक्रम हैं और यह व्यतिक्रम कब सहसा घटित हो जाता है यह पहले से कोई नहीं बता सकता। बिन्नी पंखा फेंककर चली गयी।

दूसरे दिन सवेरे यतीन बरामदे में बैठा था, पेड़-पौधों के बीच कोयल की कूक ने भारी धूम मचा रखी है, आम के बौर के गन्ध से वातास भाराक्रांत है—इतने में देखा बिन्नी चाय का प्याला हाथ में लिये आने में जैसे कुछ हिचकिचा-सी रही हो। उसकी हिरण जैसी आंखों में एक सकरुण भय समाया था—उसके चाय लेकर आने पर यतीन खीझेगा तो नहीं, यह जैसे वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। इससे व्यथित हो यतीन ने आगे बढ़कर उसके हाथ से प्याला ले लिया। इस मानव जन्मधारी हरिण शिशु को तुच्छ कारणों से क्या पीड़ा पहुंचाई जा सकती है। जैसे ही यतीन ने प्याला हाथ में लिया वैसे ही देखा बरामदे के दूसरे छोर से पटल ने सहसा प्रकट हो मौन हंसी से यतीन को घूंसा दिखाया; जिसका मतलब यह था कि आज कैसे पकड़े गये!"

उस दिन शाम के समय यतीन कोई एक डॉक्टरी पत्रिका पढ़ रहा था, इतने में फूलों की सुगन्ध से चकित हो सिर उठाकर देखा, बिन्नी ने मौलश्री के फूलों की माला हाथ में ले कमरे में प्रवेश किया। यतीन ने मन-ही-मन कहा, "यह तो बड़ी ज्यादती हो रही है—पटल के इस निष्ठुर मनोरंजन को और अधिक बढ़ावा देना उचित नहीं होगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसने बिन्नी से कहा, "छीः-छीः बिन्नी, तुम्हारे साथ तुम्हारी दीदी मजाक कर रही है, तुम इतना भी नहीं समझ पा रही।"

बात खत्म होते-न-होते ही बिन्नी ने भीत संकुचित भाव से जाने का उपक्रम किया। तब यतीन ने जल्दी से बुलाकर कहा, "बिन्नी, जरा देखूं तो सही तुम्हारी माला," और माला उसके हाथ से ले ली। बिन्नी के मुख पर आनन्द की उज्ज्वलता फूट पड़ी, उसी क्षण ओट से एक उच्च हास्य की उच्छ्वास ध्वनि सुनाई पड़ी।

दूसरे दिन, सुबह पटल जब हंगामा मचाने के लिए यतीन के कमरे में पहुंची तो वहां जाकर देखा, कमरा सूना पड़ा है। एक कागज पर केवल इतना ही लिखा था, 'भाग चला—यतीन।'

"अरी ओ बिन्नी, तेरा दूल्हा तो भाग गया। तू उसे रोक नहीं पायी", यह कहकर पटल ने बिन्नी की चोटी पकड़ हिलायी और घर के कामकाज में लग गयी।

इस बात को समझने में बिन्नी को कुछ समय लगा। वह चित्रवत् खड़ी रही और टकटकी लगाये सामने ताकती रही। फिर धीरे-धीरे यतीन के कमरे में आयी। देखा, उसका कमरा खाली पड़ा है। उसकी पूर्व सन्ध्या की दी हुई माला मेज़ पर पड़ी है।

बसन्त का प्रातःकाल स्निग्ध सुन्दर; कृष्ण चूड़ा की शाखा के भीतर से छाया के साथ घुली-मिली कांपती हुई धूप बरामदे के ऊपर आ पड़ी है। गिलहरी अपनी पूंछ पीठ पर उठा इधर-उधर दौड़-धूप कर रही है और पक्षीगण एक साथ कई सुरों में गाना गाते हुए भी अपने वक्तव्य विषय को किसी भी तरह समाप्त नहीं कर पा रहे हैं। विराट पृथ्वी के इस कोने में यह थोड़ी-सी घन पल्लव छाया और धूपरचित जगतखण्ड में प्राणों का आनन्द फूट पड़ रहा था; उसी के बीच यह बुद्धिहीन बालिका अपने जीवन का, अपने चारों ओर के परिवेश का कोई संगत अर्थ समझ नहीं पा रही थी। सारा-का-सारा ही एक दुर्बोध पहेली है। यह क्या हुआ! और ऐसा क्यों हुआ!! और उसके बाद यह भोर, यह घर, यह जो कुछ है ऐसे ही एकदम एकबारगी ऐसे सूना हो गया, क्यों। जिसमें समझने की सामर्थ्य कम हो, उसे सहसा एक दिन अपने हृदय की इस अतल वेदना के रहस्य गर्भ में बिना प्रदीप हाथ में थमाये किसने उतार दिया। जग के इस सहज-उच्छ्वसित प्राणमय राज्य में, इस पेड़-पौधे मृग-पक्षी के आत्म-विस्मृत कलरव के बीच कौन उसे फिर खींचकर ला सकेगा।

पटल के घर-गृहस्थी के काम-काज चुकाकर बिन्नी की खबर लेने आकर देखा, वह यतीन द्वारा परित्यक्त कमरे में उसकी खाट के पाये को पकड़कर धरती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर पड़ी है—सूनी शय्या को जैसे पैर पकड़कर मना रही हो। उसकी छाती में जो एक सुधा पात्र छिपा पड़ा था उसे जैसे शून्यता के चरणों में व्यर्थ के आश्वासन से औंधाकर उड़ेले दे रही है—धरती पर गठरी-सी पड़ी वह खुले बालों लोटते वस्त्रों में नारी जैसे एकाग्रता की भाषा में कह रही हो, 'लो, लो, मुझे लो। ओ जी, मुझे लो।'

पटल हैरानी में भरकर बोली, "यह क्या हो रहा है, बिन्नी?"

बिन्नी उठी नहीं; वह जैसी पड़ी थी, वैसी ही पड़ी रही। पटल के पास आकर उसे स्पर्श करते ही वह उच्छ्वसित हो फफक-फफककर रोने लगी।

तब पटल चकित हो बोल उठी, "अरी मुंह जली, मरी, तूने तो सर्वनाश कर दिया।"

पटल ने हरकुमार को बिन्नी की दशा के बारे में बताते हुए कहा, "यह क्या मुसीबत गले पड़ी। आखिर तुम क्या कर रहे थे, तुमने मुझे क्यों नहीं मना किया।"

हरकुमार बोले, "तुम्हें मना करने की तो मेरी कभी आदत नहीं रही और मना करने पर भी क्या नतीजा निकलता।"

पटल बोली, "आखिर तुम कैसे पति हो? मैं अगर कोई गलती करूं तो तुम क्या मुझे जबर्दस्ती रोक नहीं सकते? तुमने मुझे यह खेल खेलने ही क्यों दिया?"

यह कहते हुए वह दौड़ी चली गयी और जमीन पर पड़ी बालिका के गले से लिपट बोली, "मेरी रानी बहन, तुझे जो कुछ कहना है मुझसे खोलकर कह।"

हाय, बिन्नी के पास ऐसी कौन-सी भाषा है, जो अपने हृदय के अव्यक्त रहस्य को वह शब्दों से कह सके। वह एक अनिर्वचनीय वेदना को अपने वक्ष-स्थल में दबाए पड़ी है—वह कैसी वेदना है, जगत में ऐसी अनुभूति किसी अन्य को होती है या नहीं, उसे लोग क्या कहते हैं, बिन्नी यह सब कुछ भी नहीं जानती। वह केवल रोकर बता सकती है, मन की बात बताने के लिए उसके पास दूसरा उपाय नहीं।

पटल बोली, "बिन्नी, तेरी दीदी बड़ी बुरी है, लेकिन तू उसकी बात का इतना विश्वास कर लेगी, यह उसने कभी सोचा भी नहीं था। उसकी बात का तो कभी कोई विश्वास नहीं करता, फिर तूने ऐसी गलती क्यों की, बिन्नी, एक बार मुंह उठाकर अपनी दीदी की ओर तो देखा। उसे तू माफ कर दे।"

लेकिन बिन्नी का मन तब विमुख हो चुका था, वह किसी प्रकार भी पटल के चेहरे की ओर तक नहीं सकी; उसने और भी ज़ोर से हाथों में सिर को छिपा लिया। वह सारी बातों को अच्छी तरह समझ न पाने पर भी एक प्रकार की मूढ़ता से पटल पर क्रोध किये हुए थी। पटल तब धीरे-धीरे बाहुपाश खोल चुपचाप उठी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और चली गयी—फिर खिड़की के पास पत्थर की मूर्ति के समान स्तब्ध भाव से खड़ी फागुन के धूप चिक्कण सुपारी वृक्ष की पल्लव-श्रेणी की ओर ताकती रही—उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

दूसरे दिन बिन्नी दिखायी नहीं पड़ी। पटल बड़े प्यार से उसे अच्छे-अच्छे गहनों और कपड़ों से सजाती थी। स्वयं अस्त-व्यस्त रहती, अपनी साज-सज्जा के मामले में कोई जतन नहीं लेती, लेकिन अपनी साज-सज्जा के सारे शौक को वह बिन्नी के बहाने ही पूरा कर लेती। बहुत दिनों के संचित वसन-भूषण के ढेर बिन्नी के कमरे के फर्श पर पड़े हैं। अपने हाथ की बाला-चूड़ी, नाक की लौंग तक वह खोलकर फेंक गयी है। अपनी पटल दीदी के इतने दिनों के सारे प्यार-दुलार को उसने जैसे शरीर पर से मिटा डालने की कोशिश की है।

हरकुमार बाबू ने उसके बारे में पता लगाने के लिए पुलिस को खबर दी। उस समय प्लेग-दमन की विभीषिका में इतने लोग इतनी दिशाओं में भाग रहे थे कि उन भागने वालों के दल से किसी विशेष व्यक्ति को खोज पाना पुलिस के लिए कठिन था। हरकुमार बाबू ने दो-चार बार गलत व्यक्ति की खोज में बहुत कष्ट पाया था और लज्जित हो बिन्नी के मिलने की आशा भी छोड़ चुके थे। उन्होंने अज्ञात की क्रोड़ से जिस बिन्नी को पाया था—अज्ञात की क्रोड़ में ही वह फिर छिप गयी।

यतीन ने विशेष प्रयत्न से उस बार प्लेग-अस्पताल में डॉक्टर का पद प्राप्त किया था। एक दिन दोपहर में घर से भोजन के बाद अस्पताल लौटकर उसने सुना, अस्पताल में महिला वार्ड में एक नयी रोगिणी भर्ती हुई है। पुलिस उसे रास्ते पर से उठा लायी है।

यतीन उसे देखने गया। लड़की का चेहरा अधिकांश चादर से ढका था। सबसे पहले यतीन ने उसका हाथ उठाकर नाड़ी देखी। नाड़ी में ज्वर अधिक नहीं था किन्तु दुर्बलता बहुत ज्यादा थी। परीक्षा के लिए जब चेहरे से चादर हटाकर देखा तो पाया वह बिन्नी थी।

इस बीच पटल के पास से यतीन ने बिन्नी का सारा ब्यौरा जान लिया था। अव्यक्त हृदय-भाव द्वारा छायाच्छन्न उसके दो हरिण नयनों ने काम-काज की घड़ी में यतीन की ध्यान दृष्टि पर लगातार अश्रुहीन कातरता विकीर्ण की थी। आज वही रोग से मुंदी आंखों के सुदीर्घ पल्लवों ने बिन्नी के शीर्ण कपोल पर कालिमा की रेखा अंकित कर दी है; देखते ही यतीन की छाती को सहसा जैसे किसी ने कसकर धर दबाया हो। इस लड़की को विधाता ने इतने जतन से फूल के समान सुकुमार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गढ़कर अकाल से महामारी के बीच क्यों बहा दिया? आज यह जो अत्यन्त कोमल प्राण पीड़ित हो बिस्तर पर पड़ी है, इसने पिछले कई दिनों में विपद के इतने आघात, वेदना का इतना भार, सहा कैसे, कहां समेट पायी इन्हें? यतीन भी इसके जीवन के बीच एक और तीसरे संकट की तरह कहां से आकर फंस गया। रुंधी हुई गहरी सांस यतीन के वक्ष द्वार पर आघात करने लगी—किन्तु उस आघात की ताड़ना से उसके हृदय के तार में एक सुख भरी मीड़ भी बज उठी। वह जो प्रेम जगत में दुर्लभ है, यतीन के बिना मांगे ही, फागुन की एक भरी दोहपरी में एक पूर्ण विकसित माधवी मंजरी के समान अकस्मात् उसके पैरों के पास स्वयं ही खिसककर आ पड़ा था। वह प्रेम इस प्रकार मृत्यु-द्वार पर आकर मूर्च्छित हो पड़ेगा, पृथ्वी पर भला कौन व्यक्ति उस देवभोग्य नैवेद्य प्राप्ति का अधिकारी है?

यतीन बिन्नी की बगल में बैठकर उसे थोड़ा-थोड़ा गरम दूध पिलाने लगा। दूध पीते-पीते उसने बहुत देर बाद गहरी सांस भरी और आंखें खोलीं। यतीन के मुंह की ओर तकते हुए वह उसे सुदूर स्वप्न की तरह याद करने की कोशिश करने लगी। यतीन ने जब माथे पर हाथ रखा और थोड़ा हिलाकर कहा, "बिन्नी।" तब उसकी अचेतनता की अन्तिम आच्छन्नता अचानक दूर हो गयी—उसने यतीन को पहचाना और तभी उसकी आंखों पर वाष्प कोमल एक और मोह का आवरण पड़ा। प्रथम मेघ के समागम से सुगम्भीर आषाढ़ के आकाश के समान बिन्नी की काली आंखों पर एक जैसे सुदूरव्यापी सजल स्निग्धता घनी हो आयी।

यतीन सकरुण जतन के साथ बोला, "बाकी बचे दूध को भी खत्म करो।"

बिन्नी थोड़ा उठ बैठी और प्याले पर से यतीन के चेहरे की ओर अपलक देखते हुए उस बाकी दूध को भी धीरे-धीरे पी गयी।

अस्पताल में डॉक्टर के एक ही रोगी के पास देर तक बैठे रहने से काम नहीं चलता, और यह देखने में भी अच्छा नहीं लगता। अन्य स्थानों के कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए यतीन जब उठा तब भय और नैराश्य से बिन्नी की आंखें व्याकुल हो उठीं। यतीन ने उसका हाथ पकड़कर आश्वासन भरे शब्दों में कहा, "मैं फिर जल्द ही आऊंगा, बिन्नी। तुम्हें कोई भय नहीं।"

यतीन ने अधिकारियों को बताया कि इस नयी लायी गयी रोगिणी को प्लेग नहीं हुआ है, वह भूख से कमजोर हो गयी है। यहां प्लेग के दूसरे रोगियों के साथ रहना उसके लिए खतरनाक हो सकता है।

बड़ी कोशिशों से यतीन ने बिन्नी को अन्यत्र ले जाने की अनुमति प्राप्त की और उसे अपने घर ही ले आया। पटल को सारी बातें बताते हुए पत्र भी लिख दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उस दिन शाम के समय रोगी और चिकित्सक के अलावा कमरे में दूसरा कोई नहीं था। सिरहाने रंगीन कागज के आवरण में घिरी एक मिट्टी के तले की बाती छायाच्छन्न मृदु प्रकाश विकीर्ण कर रही थी, ब्रैकेट के ऊपर एक घड़ी निस्तब्ध कमरे में टिक्-टिक् करती पेण्डुलम हिला रही थी।

यतीन ने बिन्नी के माथे पर हाथ रखकर पूछा, "अब तबीयत कैसी है, बिन्नी?"

बिन्नी ने उसका कोई उत्तर न दे, यतीन के हाथ को माथे पर ही दबा रखा।

यतीन ने फिर पूछा, "तबीयत अच्छी लग रही है?"

बिन्नी ने आंखों को तनिक बन्द कर कहा, "हां।"

यतीन ने पूछा, "तुम्हारे गले में यह क्या है, बिन्नी?"

बिन्नी ने जल्दी से कपड़ा खींचकर उसे ढंकने की चेष्टा की। यतीन ने देखा, वह एक सूखी मौलश्री की माला थी। उसे यह भी स्मरण हो आया कि वह माला कौन-सी है। यतीन घड़ी के टिक्टिक् शब्द के बीच चुपचाप बैठा हुआ कुछ सोचने लगा। बिन्नी की यह पहली-पहली बार छिपाने की कोशिश, अपने हृदय के भाव को गोपन करने का उसका यह प्रथम प्रयास। बिन्नी हिरण शिशु थी, वह कब हृदय-भारातुर युवती नारी हो उठी। किस धूप के प्रकाश, किस धूप के उत्ताप से उसकी बुद्धि का ऊपर का सारा कुहरा छंट गया और उसकी लज्जा, उसकी शंका, उसकी वेदना ऐसी अकस्मात् प्रकट हो पड़ी।

रात के दो-ढाई बजे, यतीन चौकी पर बैठा-बैठा ही सो गया था। अचानक दरवाजा खुलने की आवाज से वह चौंक उठा। उसने देखा, पटल और हरकुमार बाबू ने एक बड़ा-सा बैग हाथ में लिए हुए कमरे में प्रवेश किया।

हरकुमार बोले, "तुम्हारी चिट्ठी पाकर कल सुबह आने की सोचकर बिस्तर पर लेटा। आधी रात में पटल बोली, 'सुनो, कल सवेरे जाने पर बिन्नी को देख नहीं पाऊंगी, मुझे अभी जाना होगा।' मैं पटल को किसी भी तरह समझा-बुझाकर रोक न पाया, उसी समय किराये की गाड़ी लेकर चल पड़ा।"

पटल हरकुमार से बोली, "चलो, तुम यतीन के बिस्तर पर सो जाओ।"

हरकुमार थोड़ी-सी आपत्ति जताते हुए यतीन के कमरे में जाकर लेट गये; उन्हें नींद आने में भी देरी नहीं हुई।

पटल लौट आयी और यतीन को कमरे में ले जाकर पूछा, "कोई उम्मीद है?"

यतीन बिन्नी के पास आया। उसकी नाड़ी देखी और सिर हिलाकर इशारे से बताया, कोई आशा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पटल बिन्नी के सामने अपने को प्रकट नहीं करना चाहती थी। तभी यतीन को आड़ में ले जाकर बोली, "यतीन, सच कहना, क्या तुम बिन्नी को नहीं चाहते।"

यतीन ने पटल को कोई उत्तर नहीं दिया और बिन्नी के बिस्तर के पास आ बैठा।

उसने उसका हाथ दबाकर हिलाते हुए कहा, "बिन्नी, बिन्नी।"

बिन्नी ने आंखें खोलीं और चेहरे पर एक शान्त मधुर मुस्कान का आभास मात्र लाकर बोली, "क्या बात है दादा बाबू?"

यतीन बोला, "बिन्नी, तुम अपनी यह माला मेरे गले में पहना दो।"

बिन्नी अपलक अबूझ आंखों से यतीन के चेहरे की ओर तकती रही।

यतीन बोला, "अपनी यह माला मुझे नहीं दोगी?"

यतीन के इस दुलार का प्रश्रय पा बिन्नी के मन में पूर्वकृत अनादर का जरा-सा मान जग उठा। वह बोली, "उससे क्या होगा, दादा बाबू?"

यतीन दोनों हाथों में उसके हाथ को लेकर बोला, "मैं तुम्हें प्यार करता हूं, बिन्नी।"

यह सुनकर क्षणभर के लिए बिन्नी स्तब्ध हो रही; उसके बाद उसकी दोनों आंखों से अविरल आंसू बहने लगे। यतीन बिस्तर के पास ही घुटने मोड़कर बैठ गया, और बिन्नी के हाथ के पास सिर झुकाकर रखा। बिन्नी ने गले से माला उतारकर यतीन के गले में पहना दी।

तभी पटल ने उसके पास आकर पुकारा, "बिन्नी।"

बिन्नी ने अपने शीर्ण मुख को उज्ज्वल कर कहा, "क्या, दीदी?"

पटल उसके पास आकर उसका हाथ पकड़कर बोली, "अब तो तू मुझसे नाराज नहीं, बहन।"

बिन्नी स्निग्ध कोमल दृष्टि से बोली, "नहीं दीदी।"

पटल बोली, "यतीन, तुम थोड़ी देर के लिए उस कमरे में जाओ।"

यतीन के पास वाले कमरे में जाने पर पटल ने बैग खोलकर बिन्नी के सारे गहने-कपड़े उसमें से बाहर निकाले। रोगिणी को अधिक न हिला-डुला एक लाल बनारसी साड़ी बड़ी सावधानी से उसके मलिन वस्त्र पर लपेट दी। फिर एक-एक कर चूड़ी पहना दोनों हाथों में दो बालाएं पहना दीं। इसके बाद बुलाया, "यतीन।"

यतीन के आते ही उसे बिस्तर पर बिठाकर पटल ने उसके हाथ में बिन्नी का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक सोने का हार पकड़ाया। यतीन ने उस हार को धीरे-धीरे बिन्नी का सिर ऊपर उठाकर पहना दिया।

प्रभात में भोर का प्रकाश जब बिन्नी के मुख पर आ पड़ा तब वह प्रकाश वह देख न सकी। उसकी अम्लान मुख-कान्ति देखकर लगा, वह मरी नहीं है—जैसे एक अतल स्पर्श, सुख स्वप्न में निमग्न हो गयी है!

जब मृत देह ले जाने का समय हुआ तब पटल बिन्नी के सीने पर गिर रोती-रोती बोली, "बहन, तेरा भाग्य अच्छा है। जीवन से तेरा मरण सुखकर है।"

यतीन बिन्नी की उस शान्त स्निग्ध मृत्यु-छवि की ओर तकते हुए सोचने लगा, "जिनका धन था उन्होंने ही रख लिया, और साथ ही मुझे भी वंचित नहीं किया।"

चैत, 1308 (बंगाब्द)
1902 ई.

S.P.S Library
S.P.S. Library
Srinagar

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हैमन्ती

कन्या के पिता सब्र कर सकते थे, पर वर के पिता ने सब्र करना न चाहा। उन्होंने देखा, लड़की के विवाह की उम्र पार हो चुकी है, और कुछ दिन बीतने पर तो उसे शिष्ट या अशिष्ट किसी भी उपाय से दबा रखने का अवसर भी पार हो जायेगा। लड़की की उम्र अबाध रूप से बढ़ अवश्य गयी है, किन्तु तुलना में दहेज के रुपयों का भारीपन अभी उससे कुछ ऊपर है, इसीलिए जल्दी है।

मैं वर था। इसलिए विवाह के बारे में मेरे मत की जानकारी अनावश्यक थी। मैंने अपना काम किया है, एफ़॰ ए॰ पास करके छात्रवृत्ति पायी है। इसलिए प्रजापति के दोनों पक्ष—कन्यापक्ष और वरपक्ष, अत्यधिक विचलित हो उठे।

हमारे देश में जिस व्यक्ति ने एक बार विवाह कर लिया है विवाह के बारे में उसके मन में फिर कोई उद्वेग नहीं रहता। नरमांस का स्वाद चख लेने पर मनुष्य के प्रति बाघ की जो मनोदशा होती है स्त्री के सम्बन्ध में उसका भाव भी कुछ उसी प्रकार का हो जाता है। स्त्री का अभाव प्रतीत होते ही उसे दूर कर लेने में उन्हें कोई द्विधा नहीं होती, चाहे उनकी अवस्था जैसी भी हो और आयु कितनी भी क्यों न हो। जितनी द्विधा और दुश्चिन्ता सब हमारे नये लड़कों में ही दीखती है। विवाह के पुनः-पुनः प्रस्ताव से उनके पितापक्ष के सफेद बाल खिजाब के आशीर्वाद से पुनः-पुनः काले हो उठते हैं और प्रथम मध्यस्थता की आंच से ही लड़कों के काले बाल चिन्ता या फिक्र से एक रात ही में सफेद होने को हो आते हैं।

सच कह रहा हूं, मेरे मन में ऐसा कोई विषम उद्वेग पैदा नहीं हुआ बल्कि विवाह की बातचीत से मेरे मन में जैसे वासंती बयार बहने लगी। कौतूहली कल्पना के किसलयों में मानो कोई कानाफूसी होने लगी जिस एडमण्ड बर्क के 'फ्रेंच रिव्योल्यूशन' के नोट की पांच-सात कापियां कण्ठस्थ करनी होगी, उसके लिए ऐसा भाव अनुचित है। मेरे इस लेख की यदि टेक्स्टबुक समिति द्वारा अनुमोदित होने की जरा भी आशंका रहती, तो सावधान हो जाता।

लेकिन मैं यह क्या कर रहा हूं! यह क्या कोई कहानी है जिसे लेकर उपन्यास लिखने बैठा हूं। ऐसे सुर में मेरा लिखना शुरू होगा यह क्या मैं जानता था। मन में था, कई वर्षों की वेदना से जो मेघ काले होकर जमा हुए हैं, उन्हें वैशाखी सन्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

या की तूफानी वर्षा के समान प्रबल वर्षण से निःशेष कर दूंगा। लेकिन मैं बाङ्गला में शिशु पाठ्य-पुस्तक तक नहीं लिख सका क्योंकि संस्कृत मुग्ध बोध व्याकरण मैंने नहीं पढ़ा—और न काव्य-रचना ही कर सका; वजह यह थी कि मातृभाषा मेरे जीवन में ऐसी पुष्पित न हो सकी, जिससे अपने अन्तर को बाहर प्रकट कर सकता। इसीलिए देख रहा हूं, मेरे भीतर का श्मशानचारी संन्यासी अट्टहास द्वारा अपना ही परिहास करने बैठा है। बिना किये क्या करे! उसमें आंसू तलक सूख गये हैं। जेठ का प्रखर रौद्र ही तो जेठ का अश्रुशून्य रोदन है।

मेरे साथ जिसका विवाह हुआ था उसका असली नाम नहीं कहूंगा। कारण, विश्व के इतिहास में उसके नाम को लेकर पुरातत्त्ववेत्ताओं में विवाद की कोई आशंका नहीं है। जिस ताम्रफलक पर उसका नाम खुदा है, वह मेरा हृदयपट ही है। किसी समय भी वह पट और वह नाम विलुप्त होगा, ऐसी बात मैं सोच भी नहीं सकता। किन्तु, जिस अमृत लोक में वह अक्षय हो रहा वहां इतिहासकारों का आना-जाना नहीं होता।

मेरे इस लेख में उसका जैसा भी हो एक नाम तो चाहिए ही। अच्छा तो उसका नाम दे डाला शिशिर है। चूंकि शिशिर में रोना-हंसना बिल्कुल एकाकार हो गये हैं और शिशिर में भोर वेला की बात प्रातःवेला में आकर समाप्त हो जाती है।

शिशिर मेरे से केवल दो वर्ष छोटी थी। लेकिन मेरे पिता गौरीदान के पक्ष में न हों ऐसी बात नहीं थी। उसके पिता उग्रभाव से समाज विद्रोही थे, देश में प्रचलित धर्म-कर्म किसी में भी उनकी आस्था नहीं थी; उन्होंने जमकर अंग्रेजी पढ़ी थी। मेरे पिता उग्रभाव से समय के अनुगामी' थे; मानने में बाधा हो, ऐसी चीज हमारे समाज में, सदर या अन्दर में, ड्योढ़ी या पिछवाड़े के रास्ते में खोजे नहीं मिलेगी, क्योंकि इन्होंने भी अंग्रेजी जमकर पढ़ी थी। पितामह और पिता दोनों की ही विचारधाराएं विद्रोह की दो पृथक् मूर्तियां थीं, कोई भी सीधी स्वाभाविक नहीं। फिर भी, एक बड़ी उम्र वाली थी इसीलिए दहेज की रकम भी बड़ी थी। शिशिर मेरे ससुरजी की इकलौती बेटी थी। पिताजी का विश्वास था कि कन्या के पिता की सारी सम्पत्ति भावी जामाता के भविष्य के गड्ढे को भरने वाली है।

मेरे ससुरजी ने किसी खास विचारधारा की बला नहीं पाली थी। वे पश्चिम की ओर किसी पहाड़ी रियासत के किसी राजा के अधीनस्थ कोई बड़े ओहदे पर थे। शिशिर जब गोद में थी तभी उसकी मां की मृत्यु हो गयी थी। कन्या प्रतिवर्ष एक-एक वर्ष करके बड़ी होती जा रही थी, यह बात मेरे ससुर की दृष्टि में आयी ही नहीं। वहां उनके समाज में भी ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो उनकी आंखों में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अंगुली डालकर यह दिखा देता।

यथासमय शिशिर की उम्र सोलह वर्ष हुई; किन्तु वह सोलह स्वभाव का था, समाज का सोलह नहीं। किसी ने उसकी उम्र के विषय में सावधान होने की सलाह नहीं दी, उसने भी अपनी उम्र की ओर मुड़कर नहीं देखा।

मैं उस समय तक कॉलेज के तृतीय वर्ष में था--मेरी उम्र उन्नीस साल की थी, और तभी मेरा विवाह हुआ। यह उम्र समाज की दृष्टि या समाज सुधारकों की दृष्टि में उपयुक्त है या नहीं, इसे लेकर दोनों पक्ष लड़ते हुए खून खराबी क्यों न करें, किन्तु मैं कहता हूं, यह उम्र परीक्षा पास करने के लिए कितनी ही अच्छी क्यों न हो पर विवाह सम्बन्ध के लिए भी कुछ कम अच्छी नहीं है।

विवाह का अरुणोदय एक चित्र के आभास से हुआ। मैं पाठ कंठस्थ कर रहा था। मजाक का रिश्ता रखने वाली एक आत्मीया ने मेरी मेज पर शिशिर की तस्वीर को रखते हुए कहा, "एकदम जी-तोड़ मेहनत द्वारा अब असली पढ़ाई पढ़ो।"

किसी एक अनाड़ी छाया चित्रकार का खींचा चित्र। मां तो थी नहीं, इसलिए किसी ने कसकर बाल बांधकर, जूड़े में जरी लपेटकर, सारा या मल्लिक कम्पनी का बेतुका-भड़कीला जाकेट पहनाकर वरपक्ष की आंखों को लुभाने के लिए जालसाजी की कोशिश नहीं की थी। एक बहुत ही सीधा-सादा-सा चेहरा, सीधी-सादी दो आंखें और सीधी-सादी एक साड़ी। लेकिन सारा कुछ मिलाकर यह ऐसी महिमा थी, जिसका मैं बखान नहीं कर सकता। जैसी-तैसी एक चौकी पर बैठी पीछे एक धारीदार दरी लटक रही थी, बगल में एक तिपाई पर रखे फूलदान में गुलदस्ता और गलीचे पर साड़ी की तिरछी किनारी के नीचे दो नंगे पैर।

पट के चित्र को मेरे मन की जादुई सोने की सलाई के छूते ही वह मेरे जीवन में जाग उठी। वे दो काली आंखें मेरे समस्त भावों के बीच न जाने कैसे तकती रहीं और तिरछी किनारी के नीचे के दो नंगे पैरों ने मेरे हृदय को अपना पद्मासन बना लिया।

पंचांग के पन्ने पलटते हुए; दो-तीन विवाह के लग्न पीछे रह गये, पर ससुरजी को छुट्टी नहीं ही मिली। उधर सामने एक अकाल[1] चार-पांच महीने जोड़कर मेरी क्वांरी उम्र की सीमा को उन्नीसवें वर्ष से निरर्थक बीसवें वर्ष की ओर ठेलने का चक्रांत चला रहा था। ससुर और उनके मुनीम पर गुस्सा आने लगा।

जो हो, अकाल के ठीक पूर्व लग्न में आकर विवाह का दिन ठहरा। उस दिन

1. वे दिन जिनमें विवाह के मुहूर्त नहीं बनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की शहनाई की हर एक तान का मुझे स्मरण आ रहा है। उस दिन के प्रतिक्षण को मैंने अपनी सारी चेतना द्वारा स्पर्श किया है। मेरी उन्नीस वर्ष की वह उम्र मेरे जीवन में अक्षय हो रही।

विवाह-मण्डप में चारों ओर हो रहे शोरगुल के बीच कन्या का कोमल हाथ मेरे हाथ में आ पड़ा। परम आश्चर्य! मेरा मन बार-बार कहने लगा, "मैंने पाया, मैंने इसे पाया।"

किसे पाया! यह तो दुर्लभ है, यह तो मानवी है, इसके रहस्य का क्या अन्त है।

मेरे ससुर का नाम गौरीशंकर है। जिस हिमालय पर वे वास करते उस हिमालय के वे जैसे मीत हों। उनके गाम्भीर्य के शिखर प्रान्त पर एक स्थिर हंसी उज्ज्वल हो विराज रही थी और उनके हृदय के भीतर स्नेह का एक सोता था उसका पता जिन्होंने भी पाया, वे उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे।

कर्मक्षेत्र में लौटने के पूर्व मेरे ससुरजी ने मुझे बुलाकर कहा, "बेटा, मैं अपनी कन्या को सत्रह वर्षों से जानता हूं और तुम्हें मात्र इन कई दिनों से, फिर भी वह तुम्हारे ही हाथों रही। जो धन सौंप दिया उसका मूल्य जैसे समझ सको, इससे अधिक और क्या आशीर्वाद दे सकता हूं।"

उनके समधी और समधिन दोनों ने उन्हें बार-बार आश्वासन देते हुए कहा, "समधी जी, आप कोई चिन्ता न करें। आपकी कन्या जैसे पिता को छोड़कर आयी है, वैसे ही यहां उसे मां-बाप दोनों ही मिले।"

उसके बाद ससुरजी कन्या से विदा लेते समय मुस्कराये और बोले, "बेटी, मैं चला। तेरा एकमात्र यह पिता, आज से यदि उसका कुछ खो जाये, चोरी चला जाये या नष्ट हो जाये तो मैं उसके लिए उत्तरदायी नहीं।"

कन्या बोली, "क्या खूब कहा। कहीं यदि जरा-सा भी नुकसान हुआ तो तुम्हें ही क्षतिपूर्ति करनी होगी।"

अन्त में, नित्य ही जिन विषयों में उनसे गड़बड़ी होती थी, उनके बारे में उसने पिता को बार-बार सावधान किया। खानपान के मामले में मेरे ससुरजी पर्याप्त संयम नहीं रख पाते थे। ऐसे कई कुपथ्य थे, जिन पर उनकी विशेष आसक्ति थी—पिता को उन सब प्रलोभनों से यथासंभव दूर रखना कन्या का विशेष दायित्व था। इसलिए आज उसने पिता का हाथ पकड़कर उद्वेग के साथ कहा, "बाबूजी, तुम मेरी बात रखना—रखोगे न?"

पिता ने हंसकर कहा, "मनुष्य प्रण करता है और फिर वचन तोड़कर चैन की सांस लेता है, इसलिए वचन न देना ही सबसे अधिक निरापद है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पिता के चले जाने के बाद कमरे का दरवाजा बन्द हो गया। फिर उसके बाद क्या हुआ, किसी को मालूम नहीं।

पिता और पुत्री की अश्रुहीन विदाई को बगल वाले कमरे से कौतूहली अन्तःपुरवासियों के दल ने देखा और सुना। आश्चर्य है! सूखे प्रदेश में रहकर ये भी शुष्क हो गये हैं, मोह ममता बिल्कुल नहीं।

मेरे ससुरजी के मित्र बनमाली बाबू ने ही हमारे विवाह की मध्यस्थता की थी। वे हमारे परिवार के भी परिचित व्यक्ति हैं। उन्होंने मेरे ससुर से कहा था, "संसार में तुम्हारी तो केवल यही एक लड़की है। अब इन्हीं के बगल में किराये का घर लेकर यहीं जिन्दगी बिताओ।"

उन्होंने कहा, "जो दिया वह सारा निःशेष करके ही दिया। अब मुड़कर देखने से कष्ट ही होगा। अधिकार छोड़कर अधिकार जमाने जाने जैसी विडम्बना दूसरी नहीं।"

सबके अन्त में मुझे अकेले में ले जाकर अपराधी की तरह ससंकोच बोले, "मेरी लड़की को पुस्तक पढ़ने का बड़ा शौक है और लोगों को खिलाना-पिलाना बहुत पसन्द है। इसके लिए समधी को परेशान करने की इच्छा नहीं होती। मैं बीच-बीच में तुम्हें रुपये भेज दिया करूंगा। तुम्हारे पिताजी को मालूम होने पर वे नाराज तो नहीं होंगे?"

यह प्रश्न सुनकर कुछ आश्चर्य हुआ। गृहस्थी में कहीं से अर्थ समागम होने पर पिताजी अप्रसन्न होंगे, उनका दिमाग इतना तो खराब कभी नहीं देखा।

मानो मुझे घूस दे रहे हैं, इस प्रकार मेरे हाथ में सौ रुपये का नोट खोंसकर मेरे ससुर तेजी से चलते बने--मेरा प्रमाण तक ग्रहण करने के लिए सब्र नहीं कर पाये। बाद में देखा, पाकेट से रूमाल निकाला है।

मैं स्तब्ध हो बैठा सोचता रहा। मन-ही-मन समझा, ये लोग दूसरी प्रकृति के मनुष्य हैं।

अपने मित्रों में से बहुतों को विवाह करते देखा है। मंत्र पढ़ने के साथ-ही-साथ पत्नी को एकदम एक ही ग्रास में निगल लेते हैं। पाकयंत्र में पहुंचकर कुछ देर बाद इस पदार्थ के नाना गुणावगुण प्रकट हो सकते हैं और क्षण-क्षण पर आभ्यन्तरिक उद्वेग उपस्थित होते रहते हैं, लेकिन रास्ते में कहीं कुछ भी नहीं अटकता। मैंने तो विवाह मंडप में ही समझ लिया था, दान के मंत्र द्वारा पत्नी को जितना पाया जाता है उससे गृहस्थी भले ही चल जाती हो, लेकिन पन्द्रह आने बाकी ही रह जाते हैं। मुझे सन्देह होता है, अधिकांश लोग पत्नी से विवाह मात्र करते हैं, पाते नहीं, और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जान भी नहीं पाते कि पाया नहीं, उनकी पत्नी के पास भी अन्त तक खबर पहुंचती नहीं। लेकिन, वह तो मेरी साधना का धन थी, मेरी सम्पत्ति नहीं, वह मेरी सम्पद थी।

शिशिर—नहीं, इस नाम का प्रयोग अब नहीं चलेगा। एक तो यह उसका नाम नहीं, दूसरे यह उसका परिचय भी नहीं। वह तो सूर्य के समान ध्रुव थी; वह क्षणजीवी उषा की विदाई की अश्रुबिन्दु नहीं। क्या होगा गोपन रखकर, उसका असली नाम हैमन्ती है।

मैंने पाया, इस सत्रह वर्ष की लड़की पर यौवन का सारा प्रकाश आ पड़ा है, लेकिन अभी कैशोर के क्रोड़ से वह जगी नहीं। ठीक जैसे शैल शिखर के हिम पर प्रातः- कालीन प्रकाश विदीर्ण हो रहा है, लेकिन बर्फ अभी गली नहीं। मैं जानता हूं कि वह कितनी निष्कलंक शुभ्र है, कितनी निविड़ पवित्र है।

मेरे मन में एक चिन्ता थी कि वह एक पढ़ी-लिखी सयानी लड़की है। न जाने कैसे उसका मन पा सकूंगा। लेकिन थोड़े ही दिनों में मैंने पाया कि मन की राह के साथ पुस्तक की दुकान की राह का कहीं कोई टकराव नहीं। कब उसके सादे मन पर रंग लगा, आंखों में थोड़ा नशा-सा छा गया, कब उसके तन-मन जैसे उत्सुक हो उठे, यह ठीक नहीं बता सकूंगा।

यह तो हुई एक सिरे की बात। इसका दूसरा सिरा भी है, उसे विस्तार से बताने का अब समय हुआ है।

एक राजघराने में मेरे ससुर की नौकरी है। बैंक में उनके कितने रुपये जमा हैं, उस बारे में जनश्रुति ने कई तरह की संख्या स्थापना की हैं, और कोई भी संख्या लाख के नीचे नहीं उतरी। इसका फल यह हुआ कि उसके पिता की बोली जैसे-जैसे बढ़ती गयी हैम का आदर भी वैसे-वैसे बढ़ता गया। हमारे घर के काम-काज और रीति-रिवाज आदि सीखने को वह उत्सुक थी। पर मां ने अत्यधिक स्नेहवश उसे किसी भी काम में हाथ तक लगाने नहीं दिया। यहां तक कि हैम के साथ पहाड़ से जो दासी आयी थी यद्यपि उसे अपने कमरे में घुसने नहीं देती थी, तथापि उसकी जात के बारे में कोई सवाल इस डर से नहीं किया कि कहीं कोई अनचाहा जवाब सुनने को न मिले।

ऐसे ही दिन बीत सकते थे, लेकिन अचानक एक दिन पिताजी के मुख पर घोर अन्धकार दिखायी पड़ा। मामला यह था कि मेरे विवाह पर मेरे ससुर ने पन्द्रह हजार रुपये नगद और पांच हजार के गहने दिये थे। पिताजी को अपने किसी दलाल दोस्त से यह खबर मिली है, इसमें से पन्द्रह हजार रुपये उधार लेकर जुटाना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पड़ा था, जिसका ब्याज भी कुछ कम नहीं। लाख रुपये की जनश्रुति तो बिल्कुल धोखा है।

हालांकि मेरे ससुर की सम्पत्ति के परिणाम के बारे में मेरे पिताजी के साथ उनकी किसी प्रकार की कोई चर्चा कभी नहीं हुई, फिर भी जाने पिताजी ने किस युक्ति से यह निर्णय ले लिया कि उनके समधी ने जान-बूझकर उनके साथ धोखा किया है।

पिताजी की एक धारणा यह भी थी कि मेरे ससुर राजा के प्रधानमंत्री के जैसे किसी ऊंचे पद पर हैं। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वे वहां शिक्षा विभाग के अध्यक्ष हैं। पिताजी ने कहा, 'यानी स्कूल का हेडमास्टर—दुनिया में जितने सम्मानित पद हैं, उनमें से सबसे घटिया। पिताजी को बड़ी आशा थी कि मेरे ससुर आजकल में जब कभी भी अवसर ग्रहण करेंगे तब मैं ही राजमंत्री बनूंगा।

इन्हीं दिनों रास के उपलक्ष्य में गांव के परिजन हमारे कलकत्ते वाले घर में आ जमा हुए, लड़की को देखते ही उनमें कानाफूसी होने लगी। धीरे-धीरे दबी-छुपी कानाफूसी मुखर हो उठी। दूर के रिश्ते की कोई एक नानी कह उठीं, "हाय, मेरा तो नसीब ही फूट गया। नतबहू ने तो उमर में मुझे भी हरा दिया।"

दूसरी एक नानी श्रेणी की ही कोई वृद्धा बोल उठी, "अगर हमें हरायेगी नहीं तो अपु बाहर से बहू लाने की क्यों जाता?"

मेरी मां भी चीखकर बोली, "हैं...यह कैसी बात है? बहू की उम्र तो अभी ग्यारह से अधिक नहीं, अगले फागुन में बारहवें में पैर धरेगी। पश्चिमी इलाके में दाल-रोटी पर पली-बढ़ी है, इसी से इतनी बड़ी दीखती है।"

नानियों ने कहा, "बेटी, अभी हमें अपनी आंखों से इतना कम तो सूझता नहीं। कन्यापक्ष ने अवश्य ही तुम लोगों से उम्र के बारे में धोखा किया है।"

मां बोली, "हम लोगों ने तो जन्मपत्री तक देखी है।"

बात सच है लेकिन जन्मपत्री में ही इसका प्रमाण है कि लड़की सत्रह साल की है।

वृद्धाएं बोलीं, "जन्मपत्री में क्या धोखाधड़ी नहीं चलती।"

इस बात पर भारी बहस हुई, यहां तक कि झगड़ा हो गया।

इतने में हैम वहां आ पहुंची। किसी एक नानी ने पूछा, "नतबहू, तुम्हारी उम्र क्या है, बताओ तो भला?"

मां ने आंखों से इशारा किया। हैम उसका मतलब नहीं समझी, बोली, 'सत्रह'।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मां अधीर होकर बोल उठीं, "तुम जानती नहीं।"

हैम ने कहा, "मैं जानती हूं, मेरी उम्र सत्रह वर्ष है।"

नानियों ने एक-दूसरे की देह को बिना कुछ बोले, हौले से दबाया।

बहू की बेवकूफी से चिढ़कर मां बोलीं, "तो तुम सब जानती हो। तुम्हारे बाबूजी ने तो बताया था तुम्हारी उम्र ग्यारह की है।"

हैम चौंककर बोली, "बाबूजी ने बताया है? कभी नहीं।"

मां ने कहा, "तुमने तो बड़ी हैरानी में डाल दिया। समधी ने मेरे सामने अपने मुंह से कहा, और लड़की कहती है 'कभी नहीं'?" यह कहते हुए दुबारा आंखों से इशारा किया।

अब की बार हैम इशारे का अर्थ समझ गयी। वह स्वर को दृढ़ करती बोली, "बाबूजी ऐसी बात कभी नहीं कह सकते।"

मां का स्वर तेज़ हो गया। वे बोलीं, "तू मुझे झूठी कहना चाहती है।"

हैम ने कहा, "मेरे बाबूजी कभी झूठ नहीं बोलते।"

इसके बाद मां उसे जितनी ही गालियां बकने लगीं और बे-बात की कालिख उतनी ही बढ़ती-फैलती चारों ओर लिप-पुत गयी।

मां ने गुस्से में पिताजी के पास वधू की मूढ़ता और उससे भी अधिक जिदी स्वभाव की शिकायत की। पिताजी ने हैम को बुलाकर कहा, "अविवाहिता लड़की की उम्र सत्रह हो, यह भी कोई बड़े गौरव की बात है क्या, जिसके लिए ढिंढोरा पीटते हुए घूमना होगा? हमारे यहां यह सब नहीं चलेगा, बता दिया।"

हाय रे भाग्य! अपनी बहू के प्रति पिताजी का वह मधुमिश्रित पंचम स्वर आज एक बारगी ऐसे उस्ताद बाजखां के घोर षडज में कैसे उतर आया?

हैम ने व्यथित स्वर में प्रश्न किया, "कोई यदि मेरी उम्र पूछे तो क्या बताऊं?"

पिताजी बोले, "झूठ बोलने की कोई जरूरत नहीं, तुम कहना—मैं नहीं जानती, मेरी सास जानती हैं।"

झूठी बात किस तरह न कही जाय यह उपदेश सुन हैम कुछ इस प्रकार चुप हो रही कि पिताजी ने समझा, उनका सदुपदेश एकदम बेकार ही गया।

हैम की दुर्गति दुःख के बारे में क्या करता, उसके सामने मेरा सिर नीचा हो गया। उस दिन देखा, शरत् प्रभात के आकाश के सामने उसकी आंखों की वह सरल उदार दृष्टि न जाने किस संशय से म्लान हो गयी। सहमी हुई हरिणी के समान उसने मेरी ओर देखा। सोचा, "मैं इन लोगों को नहीं पहचानता।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उस दिन एक कीमती जिल्द चढ़ी अंग्रेजी कविता-पुस्तक उसके लिए खरीद लाया था। पुस्तक को उसने हाथ में लिया और धीरे-धीरे गोद में रख दिया, एक बार खोलकर देखा तक नहीं।

मैंने उसके हाथ को पकड़कर उठाते हुए कहा, "हैम, मुझ पर नाराज़ न होना। मैं तुम्हारे सच पर कभी आघात नहीं करूंगा, मैं तो तुम्हारे सत्य के बन्धन में बंधा हूं।"

हैम न बोली, न ही तनिक मुस्करायी। विधाता ने ऐसी मुस्कान जिसे दी है उसे कुछ बोलने की जरूरत नहीं।

पिताजी की आर्थिक प्रगति के बाद से देवता के अनुग्रह को स्थायी करने के लिए नये उत्साह से हमारे घर में पूजार्चना होने लगी। अब तक उन सारे अनुष्ठानों में घर की बहू की बुलाहट कभी नहीं होती। एक दिन नयी बहू को पूजा की सामग्री लगाने का आदेश मिला; उसने पूछा, "मां, जरा बताओ, क्या करना होगा?"

इसमें किसी के सिर पर आकाश टूट पड़ने की बात नहीं थी, क्योंकि सभी जानते थे कि कन्या मातृहीन प्रवास में पली है। लेकिन वहां तो हैम को लज्जित करना ही इस आदेश का लक्ष्य था। सभी गाल पर हाथ रखकर बोले, "अरी मैया, यह कैसी बात! यह किस नास्तिक के घर की बेटी है। अब इस घराने से लक्ष्मी विदा होने को चली, इसमें अधिक देर नहीं।"

इस उपलक्ष्य में हैम के पिता को लक्ष्य कर जो नहीं कहने योग्य था, वह भी कहा गया। जब से कटूक्तियों की हवा चली है हैम ने बिल्कुल चुप्पी साधकर सब कुछ सहा है। एक दिन के लिए भी किसी के सामने उसने आंख से आंसू नहीं गिराये। आज उसकी बड़ी-बड़ी दोनों आंखों को प्लावित करती आंसू की धारा बह चली। वह उठकर बोली, "आप लोगों को मालूम नहीं कि उस देश में मेरे बाबूजी को सब ऋषि कहते हैं?"

"अच्छा, ऋषि कहते हैं।" हंसी का जोरदार ठहाका लगा। इसके लिए उसके पिता का जब भी उल्लेख आता प्रायः कहा जाता—तुम्हारे ऋषि पिता—इस लड़की की सबसे अधिक दुखती रग कहां है, इसे हमारे घर वालों ने समझ लिया था।

वस्तुतः, मेरे ससुर न तो ब्राह्म हैं और न ईसाई। कदाचित् नास्तिक भी नहीं होंगे। देवार्चना की बात उन्होंने किसी दिन सोची भी नहीं होगी। कन्या को उन्होंने बहुत पढ़ाया-खिलाया-सुनाया, लेकिन एक दिन के लिए भी देवता विषयक कोई उपदेश उसे नहीं दिया। वनमाली बाबू ने इस विषय में उनसे एक बार प्रश्न किया था। उन्होंने उत्तर दिया, "मैं जो खुद नहीं समझता उसे सिखाने जाना मात्र कपट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भरी सीख होगी।"

अन्तःपुर में हैम की एक सच्ची भक्तिन थी, वह मेरी छोटी बहन नारानी। वह भाभी को बहुत चाहती है, इससे उसे बहुत तिरस्कार सहना पड़ता। संसार यात्रा में हैम को जो अपमान सहने पड़ते वह मैं उसी से सुनता। एक दिन के लिए भी, मैंने कभी भी हैम से कुछ नहीं सुना। वे सारी बातें संकोचवश वह होंठों पर नहीं ला पाती। वह संकोच भी खुद अपने लिए नहीं था।

हैम को अपने पिता के पास से जितने पत्र मिलते वह सब मुझे पढ़ने देती। पत्र छोटे किन्तु रस भरे होते। वह भी अपने पिता को जितने पत्र लिखती, सब मुझे दिखाती। पिता के साथ उसके सम्बन्ध को मेरे साथ न बांटने पर उसका दाम्पत्य पूरा ही नहीं हो पाता था। उसके पत्रों में ससुराल के बारे में किसी प्रकार की शिकायत का इशारा तक नहीं होता। ऐसा होने पर विपद हो सकती थी। नारानी से ही सुना था कि ससुराल के बारे में वह क्या लिखती रही है यह जानने के लिए बीच-बीच में उसके पत्र खोले जाते हैं।

पत्रों में अपराध का कोई प्रमाण न पा ऊपर वालों का मन शान्त हुआ हो, ऐसा नहीं। शायद उसमें उन्हें आशा भंग का दुःख ही मिला हो। बड़ी खीझ में भरकर वे कहने लगे, "इतनी जल्दी-जल्दी पत्र क्यों आते हैं। पिता ही सब कुछ हैं, हम लोग क्या कोई नहीं। इसे लेकर बहुत प्रिय बातें होने लगीं। मैंने क्षुब्ध होकर हैम से कहा, "तुम्हारे पिता के पत्र और किसी के हाथ न देकर मुझे ही देना। कॉलेज जाते हुए मैं पोस्ट कर दूंगा।"

हैम ने हैरानी से पूछा, "क्यों?"

मैंने संकोचवश कोई उत्तर नहीं दिया।

अब घर में सबने कहना शुरू कर दिया, "इसने अपुन का दिमाग बिगाड़ दिया है। बी. ए. की डिग्री ताक पर धरी रहेगी। लड़के का क्या दोष!"

यह तो ठीक ही है। दोष सारा बेचारी हैम का ही था। उसका दोष यह है कि उसकी उम्र सत्रह साल है, उसका दोष यह कि मैं उससे प्रेम करता हूं; उसका दोष यह कि विधाता का यह विधान है, इसलिए मेरे हृदय के पारे-पोर में सारा आकाश आज वंशी बजा रहा है।

बी. ए. की डिग्री मैं निरासक्त भाव से भाड़ में झोंक सकता था लेकिन हैम के कल्याण का प्रण किया था, पास करूंगा ही और अच्छी तरह पास करूंगा। इस प्रण की रक्षा उस दशा में मुझे दो कारणों से संभव होती दीख पड़ी—एक तो हैम के प्रेम में एक ऐसा आकाश-सा विस्तार था जो संकीर्ण आसक्ति में मन को बांधे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नहीं रख सकता था, उस प्रेम के चारों ओर एक बड़ी सुहानी बयार-सी बहती रहती। दूसरे परीक्षा के लिए जिन पुस्तकों को पढ़ना आवश्यक था उसे हैम के साथ मिलकर पढ़ना कोई असंभव कार्य नहीं था।

मैं परीक्षा पास करने की तैयारी में कमर कसकर जुट गया। एक दिन रविवार की दुपहरी में बाहर के कमरे में बैठकर मार्टिनी के चरित्र तत्त्व पुस्तक के विशेष-विशेष पंक्तियों की राह के बीचों-बीच नीले पेन्सिल का हल चलाये जा रहा था, इतने में अचानक मेरी दृष्टि बाहर की ओर गयी।

मेरे कमरे के सामने आंगन के उत्तर की ओर अन्तःपुर में जाने की एक सीढ़ी थी। उसी से सटी हुई बीच-बीच में सींखचेदार एक-एक खिड़कियां थीं। मैंने देखा, उसी एक खिड़की पर गुमसुम बैठी हैम पश्चिम की ओर ताकती हुई बैठी है। उस ओर मल्लिक के बाग में कचनार का पेड़ गुलाबी फूलों से लदा था।

मेरी छाती में सहसा धपाक से एक झटका लगा, मन से उदासीनता का आवरण छिन्न हो गया था। इस निःशब्द गंभीर वेदना के रूप में मैंने इतने दिनों तक इतने स्पष्ट रूप में कभी नहीं देखा था।

और कुछ नहीं मैं केवल उसके बैठने की भंगिमाभर देख पा रहा था। उसकी गोदी में एक हाथ पर दूसरा हाथ स्थिर पड़ा हुआ था और सिर दीवार के सहारे टिका। खुले बाल बायें कन्धे से होते हुए सीने पर फैले हुए। मेरे हृदय में शून्यता की एक हूक-सी उठी।

मेरा अपना जीवन इतना लबालब भरा हुआ था कि मैं कहीं किसी शून्यता की ओर कभी गौर नहीं कर पाया था। आज अचानक ही अपने अत्यन्त निकट निराशा की एक बहुत बड़ी गहरी खाई देखी। मैं कैसे–किससे उसे पाटूंगा।

मुझे तो कुछ भी छोड़ना नहीं पड़ा। न परिजन, न आदत, न और कुछ। हैम तो सब कुछ छोड़कर मेरे पास आयी है। उसका परिणाम कितना है यह मैंने कभी अच्छी तरह सोचकर नहीं देखा था। हमारे परिवार में वह अपमान के कांटों की शय्या पर बैठी है, उस शय्या पर मैंने भी उसके साथ हिस्सेदारी बंटायी है। उस दुःख में हैम के साथ मेरा भी जुड़ाव था। उसमें हम अलग नहीं थे। लेकिन यह गिरिनन्दिनी सत्रह वर्ष की अवधि तक अन्तर-बाहर कितनी विशाल मुक्ति के बीच पली है। किस निर्मल सत्य और उदार आलोक में उसकी प्रकृति ऐसी ऋजु शुभ्र और सवाल हो उठी है। उससे हैम किस निरतिशय और निष्ठुर रूप से विच्छिन्न हुई है, इतने दिनों तक उसे मैं पूरी तरह से अनुभव नहीं कर पाया था, क्योंकि वहां उसके साथ मेरा आसन समान नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हैम अन्दर-ही-अन्दर पल-पल तिल-तिल घुटकर मर रही थी। उसे मैं सब दे सकता था लेकिन मुक्ति नहीं—वह मेरे अपने ही अन्तर में कहां? इसीलिए कलकत्ते की गली में उस सींखचों के अवकाश से निर्वाक् आकाश के साथ उसके निर्वाक् मन की गुपचुप बातें होतीं; और कभी-कभी रात में अचानक नींद खुल जाती तो पाता वह बिस्तर पर नहीं है, हाथ पर सिर रख तारों से भरे आकाश की ओर मुंह किये छत पर लेटी है।

मार्टिनो का चरित्र तत्त्व पड़ा रहा। सोचने लगा, क्या करूं? बचपन से ही पिताजी से मेरे संकोच का अन्त नहीं था, कभी भी उनके सामने दरबार करने का साहस या अभ्यास मेरा नहीं था। उस दिन अपने को रोक नहीं सका। लाज-संकोच छोड़कर उनसे कह बैठा, "बहू की तबीयत अच्छी नहीं है, उसको एक बार उसके पिता के पास भेजना ठीक होगा।"

पिताजी को जैसे काठ मार गया। मन में तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि हैम ने ही इस प्रकार के अभूतपूर्व साहस के लिए मुझे तैयार किया है। उसी समय वे उठे और अन्तःपुर में जाकर हैम से पूछा, "बहू, जरा मैं भी तो सुनूं कि तुम्हें क्या बीमारी है।"

हैम बोली, "बीमारी तो कुछ नहीं है।"

पिताजी ने सोचा, यह उत्तर तेज दिखाने के लिए है।

किन्तु हैम की देह दिन-प्रतिदिन सूखती जा रही थी। इसे हमने प्रतिदिन देखते रहने के अभ्यास के कारण समझा नहीं। एक दिन बनमाली बाबू ने उसे देखा तो चौंक पड़े, "अरे, यह क्या, हैम! यह तेरा चेहरा कैसा मुरझा गया है। तू बीमार तो नहीं?"

हैम बोली, "नहीं।"

इस घटना के दसेक दिन बाद ही न कोई बात न चीत, अचानक मेरे ससुर जी आ पहुंचे। हैम के गिरते स्वाथ्य के बारे में अवश्य ही वनमाली बाबू ने उन्हें चिट्ठी लिखी होगी।

विवाह के बाद पिता से विदा लेते समय पुत्री ने अपने आंसू रोक लिये थे। अबकी मिलन के दिन पिता ने ज्यों ही उसकी ठोड़ी को पकड़कर मुंह ऊपर उठाया त्यों ही हैम की आंखों के आंसू रोके नहीं रुक पाये। पिता भी एक शब्द नहीं बोल सके; पूछा तक नहीं, 'तू कैसी है?' मेरे सुसर ने कन्या के मुख पर ऐसा कुछ देखा, जिससे उसकी छाती फट गयी।

हैम पिता के हाथ पकड़े उन्हें सोने के कमरे में लिवा गयी। कितनी ही बातें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तो पूछने की है। स्वास्थ्य भी ठीक नहीं दीख रहा है।

पिता ने पूछा, "तू मेरे साथ चलेगी बेटी?"

हैम कंगालिन-सी बोल उठी, "चलूंगी।"

पिता ने कहा, "अच्छा, पहले सब ठीक ठाक कर लूं।"

मेरे ससुर अगर अत्यन्त उद्विग्न नहीं हुए होते तब इस घर में घुसते ही अनुभव कर पाते कि अब यहां उसके वे दिन नहीं रहे। सहसा उनके आविर्भाव को उपद्रव समझा गया। पिताजी ने तो अच्छी तरह बात ही नहीं की। मेरे ससुर को याद था कि उनके समधी ने कभी उन्हें बार-बार आश्वासन दिया था कि जब भी जी में आये आप कन्या को खुशी-खुशी घर ले जा सकते हैं। इस सच की अनदेखी हो सकती है यह बात वे मन में भी न ला सके।

पिताजी तम्बाकू का कश खींचते-खींचते बोले, "समधी जी, मैं कुछ कह नहीं सकता, तो फिर एक बार घर में–"

घर के मत्थे जिम्मेदारी सौंपने का बहाना मेरा जाना हुआ था। समझ गया, कुछ होने-हवाने को नहीं। हुआ भी कुछ नहीं।

बहू की तबीयत अच्छी नहीं। इतना अन्यायपूर्ण दोषारोपण!

ससुरजी ने स्वयं एक अच्छे डॉक्टर को बुलाकर जांच करवायी। डॉक्टर ने कहा, "जलवायु-परिवर्तन आवश्यक है, नहीं तो अचानक कोई सख्त बीमारी हो सकती है।"

पिताजी ने हंसकर कहा, "अचानक ही सख्त बीमारी तो जिस किसी को भी हो सकती है। यह भी कोई बात हुई भला?"

मेरे ससुर बोले, "आप जानते तो हैं कि ये प्रसिद्ध डॉक्टर हैं, इनकी बात क्या...?"

पिताजी ने कहा, "मैंने ऐसे तमाम डॉक्टर देखे हैं। दक्षिणा के बल पर सारे पंडितों के पास से हर तरह के विधान मिल सकते हैं और सभी डॉक्टरों के पास से सभी रोगों का प्रमाण-पत्र मिल सकता है।"

इस बात को सुनकर मेरे ससुर बिल्कुल स्तब्ध हो रहे। हैम ने समझा उसके पिता का प्रस्ताव अपमान के साथ अग्राह्य हुआ। उसका मन एकबारगी काष्ठवत् हो गया।

मुझसे और न सहा गया। मैंने पिताजी के पास जाकर कहा, "हैम को मैं ले जाऊंगा।"

पिताजी गरज पड़े, "इतनी हिम्मत तुम्हारी" आदि...इत्यादि...

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मित्रों में से किसी ने मुझसे पूछा, "जो कहा वह किया क्यों नहीं? पत्नी को जबर्दस्ती घर से बाहर क्यों नहीं ले गया। क्यों नहीं ले गया? क्यों!"

क्यों? यदि लोक धर्म के लिए सत्य धर्म को न ठेलूं, यदि घर के लिए घर के व्यक्ति की बलि न चढ़ाऊं, तो मेरे रक्त में युग-युग से चली आ रही जो शिक्षा है, वह किसलिए है? तुम लोगों को पता है? जिस दिन अयोध्या के लोगों ने सीता के निर्वासन की मांग की थी उन्हीं में मैं भी तो था और उस निर्वासन की गौरवगाथा का युग-युग से जो गान करते आये हैं मैं भी तो उन्हीं में से एक हूं, और मैंने ही तो उस दिन लोकरंजन के लिए स्त्री परित्याग के महत्त्व का वर्णन कर एक मासिक-पत्र में लेख लिखा था। हृदय के रक्त से मुझे किसी दिन दूसरी सीता के निर्वासन की कहानी लिखनी होगी, यह कौन जानता था?

पिता-पुत्री की विदाई का क्षण एक बार फिर आ पहुंचा। इस बार भी दोनों के चेहरे पर मुस्कान विराज रही थी। कन्या ने हंसते-हंसते झिड़कते हुए कहा, "बाबूजी, अगर फिर कभी तुम मुझे देखने के लिए इस तरह दौड़े-भागे इस घर में आये तो मैं कमरे का दरवाजा बन्द कर लूंगी।"

पिता ने हंसते-हंसते कहा, "अगर फिर कभी आया तो सेंध लगाने के लिए सब्बल भी साथ ही लेकर आऊंगा।"

इसके बाद हैम के चेहरे पर की वह चिर-परिचित स्निग्ध मुस्कान फिर कभी एक दिन के लिए भी नहीं दिखी।

उसके बाद फिर क्या हुआ यह बात मुझसे कही नहीं जाएगी।

सुन रहा हूं, मां लड़की खोज रही हैं। शायद एक दिन मां का अनुरोध अस्वीकार न भी कर पाऊं—यह भी संभव हो सकता है। इसकी वजह जाने भी दीजिये और क्या जरूरत!

जेठ, 1321 (बंगाब्द)
1917 ई.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैष्णवी

मैं लिखता रहता हूं कि लेकिन लोकरंजन मेरी कलम का धर्म नहीं, इसलिए लोग मुझे हमेशा जिस रंग से रंजित करते रहे हैं, उसमें स्याही का हिस्सा ही अधिक होता है। मेरे बारे में बहुत बातें ही सुननी पड़तीं; भाग्यक्रम से वे हितकथा नहीं होतीं और मनोहारी तो बिल्कुल नहीं।

शरीर पर जहां चोटें पड़ती रहती हैं वह स्थान कितना ही तुच्छ क्यों न हो, कष्ट के बल-बूते पर वह सारे शरीर का अतिक्रमण कर जाता है। तो व्यक्ति गाली खाकर ही पलता है वह अपने स्वभाव को परे रखकर जैसे एक-सा हो जाता है। अपने चारों ओर को अतिक्रमण में उसे केवल अपनी ही याद रहती है—उसमें आराम भी नहीं और कल्याण भी नहीं। अपने को भुला पाने में ही तो चैन है।

इसीलिए मुझे पल-पल में निर्जन खोजना पड़ता। लोगों के धक्के खाते-खाते मन के चारों ओर जो गड्ढे हो जाते हैं, विश्व-प्रकृति के सेवानिपुण हाथों के गुण से वे भर जाते हैं।

कलकत्ते से दूर एकांत में मेरे अज्ञातवास की व्यवस्था है; मैं अपनी चर्चा के उत्पात से बचने के लिए वहां अन्तर्धान हुआ रहता हूं। वहां के लोग मेरे सम्बन्ध में अभी किसी एक निर्णय पर नहीं पहुंचे हैं। उन्होंने देखा है—मैं भोगी नहीं, गांव की रात को कलकत्ते के कलुष से पंकिल नहीं करता; और योगी भी नहीं, क्योंकि दूर से मेरा जितना परिचय मिलता है, उसमें धनी होने के लक्षण हैं; मैं पथिक नहीं, गांव के रास्ते पर घूमता अवश्य रहा हूं पर किसी गन्तव्य की ओर मेरा कोई लक्ष्य नहीं; मैं गृही हूं, ऐसा कहना भी मुश्किल है, क्योंकि इस बारे में घर के लोगों के प्रमाण का अभाव है। इसलिए परिचित जीव श्रेणी में मुझे किसी एक प्रचलित वर्ग में न रख सकने के कारण गांव वालों ने मेरे बारे में चिन्ता करना एक प्रकार से छोड़ ही दिया है, मैं भी निश्चिन्त हूं।

कुछ दिन हुए खबर मिली है, इस गांव में एक व्यक्ति है जिसने मेरे बारे में मन में कुछ सोचा है, कम-से-कम मुझे बुद्धू तो नहीं समझा है।

उसके साथ प्रथम जब साक्षात्कार हुआ, तब आषाढ़ महीने की दुपहरी थी। रोना-धोना हो जाने पर भी आंखों की पलकें भीगी रहने पर जैसा भाव रहता है,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सवेरे की वर्षा के चुक जाने पर सारे पेड़-पौधे—आकाश और वातास में यही भाव था। अपने तालाब के ऊंचे कगार पर खड़े होकर मैं एक मोटी-ताजी काली गाय देख रहा था, जो घास चर रही थी। उसकी चिकनी देह पर उतरी धूप को देखकर मैं सोच रहा था कि सभ्यता ने आकाश के प्रकाश से अपनी देह को अलग-थलग कर रखने को दर्जी की इतनी सारी दुकानें खोल रखी हैं इस जैसा इतना अपव्यय तो और कहीं नहीं है।

तभी मैंने अचानक देखा कि एक प्रौढ़ा महिला ने काफी नीचे झुककर मुझे प्रणाम किया। उसकी आंचल में कई ठोंगों में कनेर, गन्धराज और दो-चार प्रकार के दूसरे फूल भी थे। उन्हीं में से एक फूल मेरे हाथ में रखकर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े वह बोली, "अपने ठाकुर जी को दिया।"

और इतना कहकर चली गयी।

मैं इतनी हैरानी में पड़ गया कि उसे अच्छी तरह देख ही नहीं सका।

बात बिल्कुल सीधी-सादी थी लेकिन मेरे पास वह ऐसी प्रकट हुई कि वह गाय जो दुपहरी की धूसर धूप में पूंछ से पीठ पर बैठी मक्खी उड़ाते-उड़ाते नववर्षा की रस कोमल घासों को लम्बी-लम्बी श्वास छोड़ते हुए शांति और आनन्द से चरती फिर रही थी उसकी जीव-लीला मुझे अपरूप-सी दीख पड़ी। यह बात सुनकर लोग हंसेंगे लेकिन मेरा मन भक्ति से भर उठा। मैंने सहज आनन्दमय जीवनेश्वर को प्रणाम किया। मैंने बाग में आम के पेड़ से पत्तों वाली एक कोमल हरी डाल तोड़ी और उस गाय को खिला दी। मुझे लगा, मैंने देवता को सन्तुष्ट कर दिया।

इसके बाद दूसरे वर्ष जब वहां गया तो माघ का अन्त था। उस समय तब भी सर्दी थी। पूरब की खिड़की से सवेरे की धूप मेरी पीठ पर पड़ रही थी। मैंने उसे मना नहीं किया। दो तल्ले के एक कमरे में बैठा लिख रहा था, नौकर ने आकर बताया, आनन्दी वैष्णवी मेरे से मिलना चाहती है। मालूम नहीं कौन है, मैंने अन्य-मनस्क हो कहा, "अच्छा, यहीं ले आ।"

वैष्णवी ने चरण की धूल लेकर मुझे प्रणाम किया। देखा, वही मेरी पूर्व परिचिता महिला है। वह सुन्दरी है या नहीं, यह देखने की उम्र गुजर चुकी है। दोहरी देह, साधारण स्त्रियों से लम्बी, नियमित भक्ति से उसकी देह तनिक झुकी हुई है, फिर भी उसमें बलिष्ठ निस्संकोच का भाव है। सबसे अधिक दृष्टि खींचने वाली हैं उसकी दो आंखें। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में भीतर की न जाने कौन-सी शक्ति से जो किसी दूर की वस्तु को निकट खींचकर देख लेती होगी।

अपनी उन्हीं दोनों आंखों से जैसे मुझे ढकेलकर वह बोली, "यह क्या मामला

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है। मुझे अपने इस राजसिंहासन के नीचे लाकर क्यों खड़ा किया? तुम्हें पेड़ के तले देखती थी, वह बड़ा अच्छा था।"

मैं समझ गया पेड़ के नीचे इसने मुझे बहुत दिनों तक बड़े ध्यान से देखा है पर मैंने इसे नहीं देखा। जुकाम होने की वजह से कई दिनों से रास्ते और बागों में घूमना बंद कर छत पर ही सन्ध्या आकाश के साथ मुकाबला करता रहा हूं, इसीलिए कुछ दिनों से वह मुझे देख नहीं पा रही।

थोड़ा रुककर वह बोली, "गौर[1], मुझे कुछ उपदेश दो।"

मैं मुश्किल में पड़ गया। बोला, "न तो मुझे उपदेश देना आता है और न लेना ही। आंखें खोलकर चुपचाप जो पाता हूं उसी के सहारे मेरा कारोबार चलता है। तुम्हें जो सामने देख रहा हूं उसी से मेरा देखना भी हो रहा है और सुनना भी हो रहा है।"

वैष्णवी बड़ी खुश हुई और 'गौर गौर' कह उठी। कहा, "भगवान केवल रसना से ही नहीं, एक-एक अंग से बोलते हैं।"

मैंने कहा, "चुप होते ही सर्वांग से उनकी उस सर्वांग की बातें सुनायी देती हैं, जिसे सुनने के लिए ही मैं शहर छोड़कर यहां आता हूं।"

वैष्णवी बोली, "यही तो मैंने भी जाना है, इसीलिए तो तुम्हारे पास आ बैठी हूं।"

जाते समय मेरे चरणों की धूल लेने को झुकी तो, मेरे मोजे पर हाथ रखते हुए उसे बड़ी बाधा मालूम हुई।

दूसरे दिन सूर्योदय के पहले ही भोर में मैं छत पर आ बैठा। दक्षिणी बगीचे में खड़े झाऊ के पेड़ों की फुनगियों से एकदम दिगंत तक फैला मैदान भांय-भांय कर रहा है। पूरब में बांस-झाड़ से घिरे गांव के गिर्द गन्ने के खेत के इस छोर से प्रतिदिन मेरे सामने सूर्य उगता। गांव का रास्ता पेड़ों की घनी छाया के बीच से सहसा निकलकर खुले मैदान के बीच में आड़ा-तिरछा होता सुदूर गांवों के काम निपटाने चला गया है।

सूर्य निकला या नहीं मालूम नहीं। कुहरे की एक शुभ्र चादर विधवा के आंचल की तरह गांव के पेड़ों पर पड़ी हुई है। मैंने देखा, उस भोर को धुंधले प्रकाश के बीच से वैष्णवी एक चलायमान कुहरे की मूर्ति की तरह ताली बजा-बजाकर हरिनाम गाते पूरब वाले गांव के सामने से चली आ रही थी।

---

1. चैतन्यदेव गौरवपूर्ण थे अतः उन्हें 'गौराङ्ग' या 'गौर' कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तन्द्रा टूटी आंखों के पलक के समान एकबारगी कुहरा साफ हो गया और उस सारे मैदान और घर के काम-काज के बीच जाड़े की धूप पूरे गांव के दादाजी की तरह पूरी तरह जमकर आ बैठी।

तब मैं सम्पादक के प्यादे को विदा करने के लिए लिखने की मेज पर आ डटा था। इतने में सीढ़ी पर पैर की आहट के साथ किसी पद का सुर सुन पड़ा। वैष्णवी गुनगुनाती हुई आयी और मुझे प्रणाम कर थोड़ी ही दूर फर्श पर बैठ गयी। मैंने लिखते हुए मुंह उठाया।

वह बोली, "कल मैंने तुम्हारा प्रसाद पाया है।"

मैंने कहा, "वह कैसे!"

वह बोली, "कल शाम को, मैं इस आशा में कि कब तुम्हारा भोजन होगा, दरवाजे के बाहर बैठी थी। भोजन हो चुकने पर नौकर जब बर्तन लेकर बाहर आया तो उसमें क्या कुछ बचा था मैं नहीं जानती, लेकिन मैंने खा लिया।"

मुझे आश्चर्य हुआ। मेरी विलायत-यात्रा की बात सभी जानते हैं। वहां मैंने क्या खाया, क्या नहीं, इसका अन्दाजा लगाना कोई मुश्किल नहीं, लेकिन गोबर नहीं खाया। यह सही है कि एक लम्बे अर्से से मांस-मछली में मेरी रुचि नहीं रही लेकिन मेरे रसोइये की जात-पांत की बात खुली सभा में न करना ही अधिक संगत है। मेरे चेहरे पर विस्मय के भाव देख वैष्णवी बोली, "यदि तुम्हारा प्रसाद ही न पा सकूं तो फिर तुम्हारे पास आने की तो कोई जरूरत नहीं थी।"

मैंने कहा, "लोग जानेंगे तो तुम्हारे ऊपर उनकी भक्ति नहीं रहेगी।"

वह बोली, "मैं तो सभी को यह बताती फिर रही हूं। सुनकर उन्होंने सोचा होगा, मेरी ऐसी ही दशा है।"

वैष्णवी किस गृहस्थी में थी उसके बारे में उसके पास से कोई विशेष सूचना नहीं मिली। केवल इतना ही सुना, उसकी मां की उम्र बहुत अधिक हो चली है और अभी तक वे जीवित हैं। उन्हें यह भी पता है कि उनकी बेटी की बहुत लोग भक्ति करते हैं। उनकी इच्छा है कन्या उनके पास जाकर रहे, लेकिन आनन्दी के मन की उसमें स्वीकृति नहीं है। मैंने पूछा, "तुम्हारा गुजारा कैसे हो पाता है?"

उत्तर में सुना, उसके भक्तों में से किसी ने उसे थोड़ी-सी जमीन दे रखी है। उसी की पैदावार वह स्वयं खाती है और कई दूसरे खाते हैं, कैसे भी वह खत्म नहीं होती। यह कहकर वह तनिक हंसती हुई बोली, "मेरे तो सब ही था—सब छोड़ आयी, फिर दूसरों के पास से मांगकर जुटा ले रही हूं। उसकी भी क्या जरूरत थी, बोलो तो?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शहर में रहते यह प्रश्न उठता तो सहज ही छोड़ता नहीं। भिक्षा जीविका से समाज का कितना अनिष्ट होता है यह तो मैं समझता था लेकिन, इस जगह पर आकर मेरी पोथी पढ़ी विद्या का सारा दर्प एकदम समाप्त हो जाता। वैष्णवी के सामने मेरे मुंह से कोई तर्क नहीं निकल पाया, मैं चुप रहा।

मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह अपने आप बोल उठी, "नहीं, नहीं, यही मेरे लिए अच्छा है। मेरे लिए मांगकर खाया गया अन्न ही अमृत है।"

उसके कहने का अभिप्राय मैंने समझ लिया। "प्रतिदिन ही जो स्वयं अन्न जुटा देते हैं, भिक्षा के अन्न से उन्हीं का स्मरण हो आता है और घर में लगता है, अपने ही अन्न का मैं अपनी ही शक्ति से जुटाकर भोग कर रही हूं।"

मेरी इच्छा हुई कि मैं उसके पति और घर के बारे में पूछूं, पर वह खुद कुछ नहीं बोली, मैंने भी प्रश्न नहीं किया।

यहां जिस मुहल्ले में उच्चवर्ण के भद्रजन रहते हैं उस मुहल्ले के प्रति वैष्णवी की श्रद्धा नहीं है। वह कहती रही, ठाकुरजी को वे लोग कुछ नहीं देते, और ठाकुरजी के भोग में वे भी सबसे ज्यादा हिस्सा बटोर लेते हैं। गरीब लोग तो बस भक्ति करते हैं और उपवास करके मरते हैं।

मैंने इस मुहल्ले के दुष्कर्म के बारे में भी बहुत कुछ सुना था, तभी मैंने कहा, "इन सब मंदमति लोगों के बीच रहकर इनकी मति-गति ठीक करो, इसी से भगवान की सेवा होगी।"

इस प्रकार के ऊंचे मूल्यवान उपदेश मैंने बहुतेरे सुने हैं और दूसरों को सुनाना भी अच्छा लगता है। लेकिन वैष्णवी विस्मय से स्तब्ध नहीं हुई। मेरे चेहरे पर अपनी दो उज्ज्वल आंखें गड़ाती हुई बोली, "तुम्हीं तो कहते हो कि भगवान पापियों के बीच है, इसलिए उनका संग करने पर भगवान की ही पूजा होती है।"

यही न?

मैंने कहा, "हां।"

वह बोली, "ये सब जीवित हैं तब तो वह भी उन्हीं के साथ है अवश्य। पर, इससे मेरा क्या; मेरी पूजा तो वहां नहीं चलेगी; मेरा भगवान तो उनके बीच नहीं है। वह जहां है मैं वहीं उसे खोजती-फिरती हूं।" यह कहकर उसने मुझे प्रणाम किया। उसका कहना यह कि केवल सिद्धांत लेकर क्या होगा, सत्य चाहिए। भगवान सर्वव्यापी है यह एक बात है—किन्तु हम उसे जहां देखते हैं वहीं वह हमारे लिए सत्य है।

इतनी बढ़ी-चढ़ी बातें भी किसी-किसी को बताना जरूरी है, वैसे मुझे निमित्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बनाकर वैष्णवी जो भक्ति करती है उसे मैं न तो ग्रहण ही करता हूं और न लौटाता हूं।

मुझे तो आज की हवा लगी है। मैं गीता पढ़ा करता हूं और विद्वानों के द्वारस्थ हो उनसे धर्मतत्त्व की अनेक सूक्ष्म व्याख्याएं सुनी हैं। केवल सुनते-सुनाते ही उमर बीत जाने को हुई, कहीं तो कुछ प्रत्यक्ष देखा नहीं। इतने दिनों बाद अपनी दृष्टि का अहंकार छोड़कर इस शास्त्रहीना स्त्री की दोनों आंखों के द्वारा सत्य को देखा। भक्ति के बहाने शिक्षा देने की यह कैसी अद्भुत प्रणाली है।

दूसरे दिन सवेरे-सवेरे वैष्णवी ने आकर मुझे प्रणाम किया और देखा कि उस समय भी मैं लिखने में ही लगा हुआ था। खीझकर बोली, "तुम्हें मेरे ठाकुर जी बेकार ही इतना खटाते क्यों हैं? मैं जब भी आती हूं देखती हूं तुम लिखने में ही लगे हुए हो।"

मैं बोला, "जो आदमी किसी भी काम का नहीं, ठाकुर जी उसे बैठे नहीं रहने देते ताकि वह मिट्टी न हो जाए। नाना प्रकार के बेकार के काम करने का भार उसी के ऊपर है।"

मैं न जाने कितने आवरणों से आवृत्त हूं यह देखकर वह बेचैन हो जाती। मुझसे मिलने के लिए आने पर उसे अनुमति लेकर दोतल्ले पर चढ़ना होता, प्रणाम करने आकर हाथ से छू जाते मोजे की जोड़ी, और सामान्य दो-चार बातें कहने-सुनने के लिए—लेकिन मेरा मन किसी लेख में डूबा रहता।

वह हाथ जोड़कर बोली, "गौर, आज भोर में जैसे ही बिस्तर पर उठ बैठी, वैसे ही तुम्हारे चरण प्राप्त हुए। ओह, वे तुम्हारे दो चरण जिन पर कोई आवरण नहीं—वे कितने शीतल! कितने कोमल! कितनी देर तक उन्हें माथे से लगाये रखा। यह तो खूब हुआ। फिर मेरे यहां आने का प्रयोजन क्या है? प्रभु, यह मेरा मोह तो नहीं? सच-सच बताओ।"

लिखने की मेज पर फूलदान में पहले दिन के फूल रखे थे। माली ने आकर उन्हें निकाला और नये फूल सजाने की तैयारी की।

वैष्णवी जैसे व्यथित हो बोल उठी, "अरे ये फूल बासी हो गये? तुम्हें इनकी जरूरत नहीं? तो दो, दो, मुझे दो।"

यह कह फूलों को अंजलि में ले, बहुत देर तक सिर झुकाकर, परम स्नेह से उन्हें अपलक दृष्टि से देखने लगी। कुछ देर बाद मुंह उठाकर बोली, "तुम आंखें खोलकर नहीं देखते इसी कारण तुम्हारे पास ये फूल मुरझा जाते हैं। जब उन्हें देखोगे तब तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई सब समाप्त हो रहेगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसा कहकर बड़े जतन से फूलों को अपने आंचल के छोर में बांध लिया और माथे से लगाकर बोली, "अपने ठाकुर जी को मैं ले जाऊं।"

केवल फूलदान में सजा रखने से ही फूल का आदर नहीं होता, यह समझने में मुझे देर नहीं हुई। मुझे लगा, स्कूल का पाठ न बता पाने वाले लड़के के समान, फूलों को प्रतिदिन मैं बेंच पर खड़ा रखता।

उसी दिन शाम के समय मैं अब छत पर बैठा था वैष्णवी मेरे पैरों के पास आ बैठी। बोली, "आज सवेरे नाम सुनने के समय तुम्हारे प्रसादी फूलों को घर-घर पहुंचा आयी हूं। मेरी भक्ति देख वेणी चक्रवर्ती हंसकर बोले, 'अरी पगली, तू किसकी भक्ति करती है? दुनियाभर के लोग तो उसे बुरा बताते हैं।' सच...क्या सभी तुम्हें गालियां देते हैं?"

क्षणभर के लिए मन कुंठित हो गया। स्याही के छींटे इतनी दूर तक भी फैलते हैं।

वैष्णवी बोली, "वेणी ने सोचा था मेरी भक्ति को एक ही फूंक में बुझा देगा। लेकिन यह कोई तेल भीगी बत्ती नहीं, यह तो आग है। मेरे गौर, वे लोग तुम्हें गाली क्यों देते हैं भला?"

मैंने कहा, "मेरा प्राप्तव्य है, इसीलिए। यह मैंने शायद एक दिन छिपकर उनके मन को चुराने का लालच दिया था।"

वैष्णवी बोली, "मनुष्य के मन में कितना जहर है यह तो तुमने देखा। अब वहां लालच टिकेगा नहीं।"

मैं बोला, "मन में लोभ के रहने पर ही मार के मुख में पड़ना पड़ता है। तब स्वयं को मारने का विष अपना मन ही प्रस्तुत कर देता है। इसलिए हमारे ओझा हम ही हैं। मन को विषमुक्त करने के लिए इतनी बेरहमी से झाड़ रहे हैं।"

वैष्णवी बोली, "दयालु ठाकुर जी मारते-मारते जब मार तक को खदेड़ देते हैं तब अन्त तक जो सह पाता है, वही बच जाता है।"

उस दिन सन्ध्या समय अन्धकार में डूबी छत के ऊपर सन्ध्या तारा उदित हुआ फिर अस्त हो गया; वैष्णवी ने अपने जीवन की कहानी मुझे सुनायी—

मेरे पति बड़े सीधे-सादे हैं। कई लोग सोचते हैं कि उनकी समझने की शक्ति कम है। पर मैं जानती हूं कि जो सहज ढंग से समझ सकते हैं वास्तव में वे ही ठीक समझते हैं।

मैंने यह भी देखा है कि अपनी खेती-बारी ज़मीन-जायदाद के मामले में वे ठगे जाते हों, ऐसी बात भी नहीं। विषय-सम्पत्ति और घर के काम-काज दोनों में ही वे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ठीक-ठाक थे। धान, चावल और सन का जो छोटा-मोटा व्यापार करते रहे, उसमें कभी घाटा नहीं हुआ। क्योंकि उनमें लोभ नहीं था। अपनी जरूरत भर वे हिसाब से चलते, उसके अधिक की बात वे समझते भी नहीं थे और उसमें हाथ भी नहीं डालते थे।

मेरे विवाह के पहले मेरे ससुर की मृत्यु हो चुकी थी और मेरे विवाह के थोड़े दिनों के बाद ही सास की भी मृत्यु हो गयी। संसार में हमारे सिर पर कोई नहीं रहा।

मेरे पति अपने सिर पर किसी ऊपर वाले को बिठाये बिना रह नहीं सकते थे। यहां तक कि...कहते लज्जा आती है, मेरी तो वह जैसे भक्ति करते थे। फिर भी मेरा विश्वास है वे मुझसे अधिक समझते थे और मैं उनसे अधिक बोलती थी।

वे सबसे ज्यादा भक्ति करते थे अपने गुरुदेव की। केवल भक्ति नहीं, वह प्रेम था—ऐसा प्रेम देखने को नहीं मिलता।

गुरुदेव उम्र में उनसे कुछ छोटे थे। कैसा सुन्दर रूप था उनका!...

कहते-कहते वैष्णवी थोड़ी देर रुकी और अपने दूरविहारी दोनों नेत्रों को बहुत दूर भेज गुनगुनाकर गाया—

अरुण किरण खानि तरुण अमृते छानि
कोन् विधि निरमिल देहा।

(अर्थात् अरुण-किरणों में तरुण अमृत उड़ेलकर किस विधाता ने इस देह का निर्माण किया?)

इन गुरुदेव के साथ उन्होंने बचपन से ही खेला है, तभी से उन्हें अपने मनप्राण सौंप दिये हैं।

तब मेरे पति को गुरुदेव बुद्धू समझते थे। इसलिए उन पर बड़े जुल्म ढाये। अन्य साथियों के साथ मिलकर मजाक-मजाक में ही उन्हें कितना परेशान किया था, उसकी कोई सीमा नहीं थी।

विवाह के बाद मैंने जब इस गृहस्थी में पांव रखा तब गुरुदेव को देखा नहीं। तब वे काशी में अध्ययन के लिए गये हुए थे। उनके वहां का सारा खर्च मेरे पति ही चलाते थे।

गुरुदेव जब घर लौटे तब मेरी आयु शायद अठारह होगी।

पन्द्रह वर्ष की उम्र में ही मेरे एक बेटा हुआ था। कच्ची उम्र के कारण मैं बच्चे का सार-संभार करना सीख नहीं पायी थी; मुहल्ले के संगी-साथियों के साथ मिलने-जुलने के लिए ही मेरा मन दौड़ता। बच्चे के लिए घर में बंधे रहना पड़ता,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसलिए कभी-कभी उसके ऊपर मुझे क्रोध भी आता।

हाय रे, इधर बच्चा आ पहुंचा और उधर मां पिछड़ गयी थी, इससे बड़ा संकट और क्या हो सकता! मेरे गोपाल ने आकर देखा उसके लिए मक्खन तो अब भी तैयार नहीं इसीलिए वह रुठकर चला गया—मैं आज भी उसे दर-दर भटकती, खोजती फिर रही हूं।

वह बच्चा पिता की आंखों का तारा था। मैंने उसकी सार-संभार करनी नहीं सीखी इससे उसके पिता भी दुःखी होते। लेकिन उनका हृदय गूंगा था, आज तक अपने दुःख की बात किसी से कह भी नहीं सके।

वे स्त्रियों की तरह अपने लड़के की सार-संभार करते। रात में उस लड़के के रोने पर मेरी कच्ची उम्र की गहरी नींद में वे बाधा नहीं डालना चाहते। स्वयं रात को उठकर दूध गरम करते और उसे पिलाकर न जाने कितनी ही बार बच्चे को गोद में लेकर सुलाते रहते; मैं यह जान भी नहीं पाती। उनके सब काम ही ऐसे चुपचाप होते। पूजा-पर्व में जमींदार के घर जब जात्रा का अभिनय होता या कथा होती तो वे कहते, "मैं रात में जग नहीं पाता, तुम चली जाना, मैं घर पर ही रहूंगा।" उनके बच्चे को साथ लेकर तो मेरा जाना सम्भव. नहीं, इसीलिए यही उनका बहाना होता।

आश्चर्य यह कि बच्चा फिर भी मुझे ही सबसे अंधिक चाहता। वह जैसे समझता था कि मौका पाते ही मैं उसे छोड़कर चली जाऊंगी, इसलिए जब वह मेरे पास रहता तब सहमा-सहमा ही रहता। मुझे उसने अधिक पाया नहीं था इसीलिए मुझे पाने की ललक उसकी किसी भी तरह तृप्त नहीं हो पाती थी।

मैं जब नहाने के लिए घाट पर जाती, तो वह भी साथ जाने के लिए रोज मुझे परेशान करता। घाट सहेलियों के साथ मेरे मिलन की जगह थी, वहां बच्चे को लेकर जाना और उसकी देखभाल करना मुझे अच्छा नहीं लगता। इसलिए सम्भव होने पर भी मैं उसे कभी ले जाना नहीं चाहती थी।

वह सावन का महीना था। तह पर तह घने काले बदालों ने इस दोपहरी को एकदम आपादमस्तक चादर ओढ़ाकर रख छोड़ा था। ठीक नहाने के लिए जाते समय मुन्ना रोने लगा। निस्तारिणी हमारे चौके का काम करती थी, उससे कह गयी, "बच्ची, जरा मुन्ने को देखती रहना, मैं घाट पर एक डुबकी लगाकर तुरत आयी।"

घाट पर ऐन वक्त और कोई नहीं था। सहेलियों के आने की प्रतीक्षा में मैं तैरने लगी। यह पोखर बहुत पुराना था, किसी रानी ने कभी इसे खुदवाया था, इसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से इसका नाम पड़ गया था 'रानी-सागर'। इस पोखर को तैरकर पार करने वाली स्त्रियों में केवल मैं ही अकेली थी। वर्षा में इसके किनारे जल से लबालब भरे थे। मैं जब यह पोखर करीब-करीब आधा पार कर चुकी तो इतने में पीछे से सुनाई पड़ा, "मां!" मैंने मुड़कर देखा, मुन्ना घाट की सीढ़ियों पर नीचे उतरता हुआ मुझे बुला रहा है। मैंने चिल्लाकर मना किया, "और आगे मत बढ़, मैं आ रही हूं।" मनाही सुनकर भी वह हंसता-हंसता आगे बढ़ने लगा। मेरे हाथ-पैर डर से जैसे कील दिये गये हों, किसी भी तरह जैसे मुझसे तैरा नहीं जा रहा है। मैंने आंखें बन्द कर लीं। पता नहीं क्या देखना पड़े। इतने में उस रपटीली घाट पर, उस पोखर के पानी में मुन्ने की हंसी सदा के लिए थम गयी। घाट पार कर उस मां की गोद के अनाथ शिशु को पानी की सतह से उठाकर गोद में भरा, लेकिन फिर भी उसने 'मां' कहकर बुलाया नहीं।

अपने गोपाल को मैंने एक दिन खूब रुलाया है तभी वे सारे अनादर आज लौटकर मुझे मारने लगे। जीवितावस्था में उसे बराबर छोड़कर जो जाती रही, इसी से आज वह दिन-रात मेरे मन को अपनी पकड़ में कसकर जकड़े हुए हैं।

मेरे पति के हृदय पर कितनी गहरी चोट पहुंची यह तो बस उनके अन्तर्यामी ही जानते थे। यदि मुझे उन्होंने गालियां दी होतीं तो अच्छा होता, पर वह तो केवल सहना ही जानते थे, कहना जानते ही नहीं थे और इस तरह जब मैं प्रायः पागल हो चुकी थी, उसी समय गुरुदेव घर लौटे।

बचपन में मेरे पति जब उनके साथ खेलते-कूदते रहे थे, तब वहां एक दूसरे प्रकार का भाव था। अब फिर इतने सालों से अलग होने के बाद जब उनका बालसखा विद्या अर्जन कर लौटा तब उन पर मेरे पति की भक्ति एकबारगी परिपूर्ण हो उठी। इन्हें कौन कहेगा लंगोटिया यार, इनके सामने तो वे जैसे एकदम बोल तक नहीं पाते।

मेरे पति ने मुझे सान्त्वना देने के लिए अपने गुरु से अनुरोध किया। गुरु मुझे शास्त्र-वचन सुनाने लगे। शास्त्र की बातों से मुझे कोई विशेष लाभ हुआ, ऐसा तो नहीं लगता। मेरे लिए उन सब बातों का जो कुछ मूल्य था वह केवल उनके मुख की सुनी बातों के कारण। मनुष्य के कण्ठ द्वारा ही भगवान अपना अमृत मनुष्य को पान कराता है, ऐसा सुधापात्र तो उनके हाथ में दूसरा नहीं। फिर, उसी मनुष्य के कण्ठ से ही तो वे भी सुधा पान करते।

गुरु के प्रति मेरे पति की अजस्र भक्ति ने हमारी गृहस्थी को सर्वत्र मधुमक्खी के छत्ते के अन्दर मधु के समान भर रखा था। हमारा आहार-विहार धन-जन सभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुछ इसी भक्ति से पूर्ण था, कहीं भी अवकाश नहीं था। मैंने उस रस में अपने सम्पूर्ण मन से डूबकर तब सान्त्वना पायी। इसलिए देवता को अपने गुरु के रूप में ही देख पाया।

वे आयेंगे, भोजन करेंगे और तत्पश्चात् मैं उनका प्रसाद पाऊंगी, प्रतिदिन प्रातः नींद से जगते ही यही बात स्मरण आती और मैं उस आयोजन में जुट जाती। उनके लिए तरकारी काटती, मेरी अंगुलियों के बीच आनन्द-ध्वनि बज उठती। मैं ब्राह्मण नहीं हूं, उन्हें अपने हाथों से पकाकर खिला नहीं सकती, इस बात से मेरे हृदय की सारी भूख मिट नहीं पाती थी।

वे तो हैं ज्ञान के समुद्र, उस ओर तो उनको कोई अभाव नहीं। मैं सामान्य स्त्री, मैं तो उन्हें बस थोड़ा-बहुत खिला-पिलाकर ही खुश कर सकती थी और उसमें भी इतनी सारी कमियां थीं।

मेरी गुरु सेवा देख मेरे पति का मन प्रसन्न होता रहता और मेरे पर उनकी भक्ति और भी बढ़ जाती। वे जब देखते मेरे निकट शास्त्र की व्याख्या करने के लिए गुरु में विशेष उत्साह है, तब वे सोचते, गुरु के निकट बुद्धिहीनता के लिए उन्होंने बराबर अश्रद्धा पायी है, अब उनकी पत्नी बुद्धि के बल पर गुरु को प्रसन्न कर पायीं, यही उनका सौभाग्य है।

इस प्रकार चार-पांच वर्ष कहां-कैसे बीत गये, वह आंखों में देख नहीं पायी। सारा जीवन ही ऐसे बीत सकता था। लेकिन चोरी-छिपे ही कहीं एक चोरी चल रही थी, वह मेरी पकड़ में नहीं आयी थी, अन्तर्यामी की पकड़ में आयी। उसके बाद एक दिन में एक क्षण में सारा उलट-पलट हो गया।

उस दिन फागुन के सवेरे घाट पर जाने के छायादार पथ से नहाकर भीगे वस्त्रों में घर लौट रही थी। रास्ते के एक मोड़ पर, आम के पेड़ के नीचे गुरुदेव के साथ मुलाकात हुई। वे कंधे पर एक अंगोछा डाले किसी संस्कृत मंत्र का पाठ करते-करते स्नान के लिए जा रहे थे।

भीगे वस्त्रों में उनके साथ मुलाकात होने पर लज्जा से एक ओर हो जाने की कोशिश कर रही थी, इतने में उन्होंने मेरा नाम लेकर पुकारा। मैं सिकुड़कर सिर नीचा किये खड़ी हो गयी। वे मेरे मुख पर दृष्टि गड़ाये बोले, "तुम्हारी देह सुन्दर है।"

डाल-डाल पर असंख्य पक्षी चहक रहे थे, रास्ते के किनारे-किनारे झाड़-झंखाड़ में भांडीर के फूल खिले थे, आम की डाल पर बौर आ रहे थे। लगा, सारा आकाश-पाताल उन्मत्त और अस्त-व्यस्त हो उठा हो। कैसे घर पहुंची, कुछ होश नहीं। एकदम से उन्हीं भीगे वस्त्रों में ही पूजागृह में घुस गयी, आंखें जैसे ठाकुरजी को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नहीं देख पायीं—उस घाट के पथ की छाया के ऊपर के प्रकाश के बुन्दे ही मेरी आंखों के सामने नाचने-झिलमिलाने लगे।

उस दिन जब गुरु भोजन करने आये तो उन्होंने पूछा, "आनन्दी कहां है?"

मेरे पति मुझे ढूंढ़ते फिरे, कहीं देख नहीं पाये।

सुनते हो जी, मेरी वह पृथ्वी अब नहीं रही, मैं सूर्य का प्रकाश खोजकर और न पा सकी। पूजागृह में अपने ठाकुरजी को बुलाती हूं, वे मेरी ओर से मुंह फेरे रहते हैं।

वह दिन कहां कैसे बीता, ठीक मालूम नहीं। रात में पति के साथ भेंट होगी। उस समय तो सब नीरव और अन्धकार। उसी समय मेरे पति का मन जैसे तारे के समान खिल उठता। उस अंधेरे में किसी-किसी दिन उनके मुख से एकाध बातें सुनकर सहसा समझ पाती, यह सरल व्यक्ति जो कुछ समझता है, वह कितने सहज ही में समझ लेता है।

घर-गृहस्थी के काम निबटाकर आने में मुझे देर होती। वे मेरे लिए बिछौने के पास प्रतीक्षा करते। अक्सर उस समय हम दोनों में अपने गुरु की कुछ-न-कुछ बातें भी होतीं।

बड़ी रात कर दी। तब तीन प्रहर होगा, कमरे में आकर देखा मेरे पति तब भी खाट पर नहीं लेटे हैं, जमीन पर ही लेटे सो गये हैं। मैं बड़ी सावधानी से बिना आहट किये उनके पैरों की ओर लेट गयी। नींद में एक बार उन्होंने पैर भी चलाया, वह मेरे सीने पर आ लगा। उसी को मैंने अन्तिम दान के रूप में ग्रहण किया।

दूसरे दिन भोर में जब उनकी नींद खुली, तब मैं उठकर बैठी थी। खिड़की के बाहर कटहल के पेड़ की फुनगी पर अंधेर में एक कोने में कुछ हल्का-सा रंग जम रहा था, तब तक कौए बोले नहीं थे।

मैंने पति के पैरों के पास माथा टेककर प्रणाम किया। वे जल्दी से उठ बैठे और मेरे मुंह की ओर चकित होकर तकते रहे।

मैंने कहा, "मैं अब घर-गृहस्थी नहीं करूंगी।"

पति ने शायद सोचा, वे स्वप्न देख रहे हैं। कुछ बोल ही न सके।

मैं बोली, "तुम्हें मेरे सिर की कसम है, तुम दूसरा विवाह कर लो। मैंने विदा ली।"

पति बोले, "तुम यह क्या कह रही हो। तुम्हें घर-गृहस्थी छोड़ने को किसने कहा?"

मैं बोली, "गुरुदेव ने।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पति चौंककर रह गये, "गुरुदेव! ऐसी बात उन्होंने कब कही?"

मैं बोली, "आज सवेरे जब स्नान करके लौट रही थी तो उनके साथ साक्षात्कार हुआ था। तभी कहा था।"

पति का स्वर कांप गया। पूछा, "ऐसा आदेश क्यों दिया?"

मैंने कहा, "मालूम नहीं। उन्हीं से पूछकर देखो, वही समझा देंगे।"

पति ने कहा, "संसार में रहकर भी तो संसार त्यागा जा सकता है, मैं यही बात गुरु को समझा कर कहूंगा।"

मैं बोली, "हो सकता है गुरु समझ जायें, पर मेरा मन नहीं मानेगा। मेरी घर-गृहस्थी आज से समाप्त हुई।"

पति चुपचाप बैठे रहे। आकाश जब प्रकाशोज्ज्वल हो गया तो वे बोले, "चलो न, दोनों एक बार उन्हीं के पास चलें।"

मैंने हाथ जोड़कर कहा, "उनके साथ अब मेरी भेंट नहीं होगी।"

उन्होंने मेरे मुंह की ओर देखा, मैंने सिर झुका लिया। वे और कुछ नहीं बोले। मैं जानती हूं, उन्होंने मेरे मन को एक प्रकार से देख लिया।

दुनिया में दो व्यक्तियों ने मुझे सबसे अधिक प्यार किया था, मेरे पुत्र और मेरे पति ने! वह प्यार ही मेरा नारायण है, इसीलिए वे मिथ्या नहीं सह सके। एक मुझे छोड़ गया, दूसरे को मैंने छोड़ा। अब सत्य को खोज रही हूं और प्रवंचना नहीं।

यह कहकर उसने साष्टांग प्रणाम किया।

आषाढ़, 1321 (बंगाब्द)
1917 ई.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अन्तिम रात

"मौसी!"

"सो जाओ यतीन, काफी रात हो गयी है।"

"होने दो, मेरे दिन तो अधिक नहीं रहे। मैं कह रहा था, मणि को उसके पिता के घर...भूल रहा हूं उसके पिता इस समय कहां होंगे...?"

"सीतारामपुर।"

"हां, सीतारामपुर। वहीं मणि को भेज दो, वह और कितने दिन रोगी की सेवा करेंगी। उसकी सेहत भी तो उतनी अच्छी नहीं।"

"भला सुनो जरा! इस हालत में तुम्हें छोड़कर बहू मायके जाना क्यों चाहेगी?"

"डॉक्टरों ने क्या बताया है, वह बात क्या वह..."

"वह न भी जाने लेकिन आंखों से तो देख रही है। उस दिन मैंने मायके जाने की बात जैसे ही इशारे से बतायी वैसे ही बहू तो रो-रोकर परेशान...।"

मौसी के इस कथन में सच्चाई को थोड़ा छिपा दिया गया था और उस बात को बताना आवश्यक है। उस दिन मणि के साथ उनकी इस प्रसंग में जो बातचीत हुई थी, वह कुछ इस प्रकार है–

"बहू, तुम्हारे मायके से कोई खबर आयी है क्या? तुम्हारे ताऊ के लड़के अनाथ को जैसे देखा।"

"हां, मां ने कहलाया है, अगले शुक्रवार को मेरी छोटी बहन का अन्नप्राशन है। इसीलिए सोच रही हूं...।"

"अच्छा, तो बेटा, एक सोने का हार भेज दो, तुम्हारी मां खुश होंगी।"

"मैं जाने की सोच रही हूं। अपनी छोटी बहन को तो अभी तक देखा नहीं, उसे देखने की इच्छा होती है।"

यह भी कोई बात है! यतीन को अकेले छोड़ जाओगी। डॉक्टर ने क्या कहा है, सुना तो है।

"डॉक्टर तो कह रहे थे, अभी वैसी कोई खास..."

"वह जो भी कहें, उसकी यह दशा देखकर जाओगी कैसे!"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"मेरे तीन भाइयों के बाद ही यह एक छोटी बहन है, बड़ी लाड़ली है—सुना है बड़ी धूमधाम से अन्नप्राशन होगा...मेरे न जाने से मां बहुत... ।"

तुम्हारी मां की बात मैं नहीं समझती, बेटी! लेकिन यतीन को ऐसी हालत में तुम अगर छोड़ जाओ तो तुम्हारे बाबूजी नाराज होंगे, यह बताये देती हूं।"

"यह मैं जानती हूं। मौसी, तुम्हें एक पंक्ति लिख देनी होगी कि कोई चिन्ता की बात नहीं...मेरे जाने से विशेष कुछ..."

"तुम्हारे जाने से विशेष कोई हर्ज तो नहीं, इतना तो मैं भी जानती हूं लेकिन यदि तुम्हारे बाबूजी को लिखना ही हो, तो मेरे मन में जो कुछ है, सब खोलकर ही लिखूंगी।"

"अच्छा, ठीक है...तुम मत लिखो। मैं जाकर उन्हें कहूं तो वे... ।"

"देख बहू, मैंने बहुत बर्दाश्त किया है पर इस बात के लिए अगर तुम यतीन के पास गयी तो मैं इसे किसी भी तरह बर्दाश्त नहीं करूंगी। तुम्हारे बाबूजी तुम्हें अच्छी तरह जानते हैं, तुम उन्हें झांसा नहीं दे सकोगी।"

"यह कहकर मौसी चली गयी। मणि कुछ देर तक क्रोध से बिछौने पर पड़ी रही।"

"पास के घर की सहेली ने आकर पूछा, "क्या बात है सखी, नाराज क्यों हो?"

"भला देख तो बहन, मेरी इकलौती बहन का अन्नप्राशन है और ये लोग मुझे जाने देना नहीं चाहते।"

"अरी मां, यह कैसी बात! वैसे जाओगी कैसे! तुम्हारे पति तो रोग से सूख रहे हैं।"

"मैं तो कुछ भी नहीं करती, न कर ही पाती हूं। घर में सबके सब चुपचाप हैं। मेरे प्राण घबरा उठे हैं। इस तरह तो मैं नहीं रह सकती...सो बताये दे रही हूं।"

"जो हो, तुम भी कमाल की औरत हो।"

"ऐसा है बहन कि मैं तुम लोगों की तरह दिखावटी ढोंग नहीं रच सकती। कहीं कोई कुछ न सोचे, इसलिए कमरे के कोने में मुंह ढांपकर पड़ी रहूं, यह तो मेरे से होने का नहीं।"

"मैं भी तो सुनूं कि फिर क्या करोगी?"

"मैं जाऊंगी, जरूर जाऊंगी...मुझे कोई पकड़कर रख नहीं सकता।"

"हूं, जरा रौब तो देखो। अच्छा, मैं चली, मुझे काम है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मायके जाने की बात पर मणि रोयी...इस खबर से यतीन विचलित हुआ और उसने तकिया खींचकर पीठ के नीचे रखा और थोड़ा-सा उठकर, टेक लगाकर बैठा। बोला, "मौसी, इस खिड़की को जरा-सा और खोल दो और इस बत्ती की इस कमरे में जरूरत नहीं।"

खिड़की खोलते ही स्तब्ध रात्रि अनन्त तीर्थ-पथ के पथिक के समान रोगी के दरवाजे के पास आ चुप खड़ी हुई। कितने युगों से कितने मृत्यु-समय के साक्षी ये तारे ...यतीन के मुख की ओर ताकते रहे।

यतीन इस विराट् अंधकार के पट पर अपनी मणि का चेहरा देख पाया। उस चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आंखें बड़े-बड़े जल-बिन्दुओं से भरी हुई...वह जल जैसे चुका नहीं, चिरकाल के लिए भरा ही रहा।

बहुत देर तक उसे चुप देख मौसी निश्चिन्त हुई। सोचा, यतीन को नींद आ गयी है।

इतने में सहसा वह बोल पड़ा, "मौसी, तुम लोग तो बराबर सोचती रही हो कि मणि का मन चंचल है, हमारे घर में उसका मन ही नहीं लगता। पर, देखो..."

"नहीं बेटा, हमने गलत समझा था...समय पड़ने पर ही आदमी की पहचान होती है।"

"मौसी।"

"यतीन, सो जाओ बेटा।"

"मुझे कुछ तो सोचने दो...कुछ तो बोलने दो। तुम गुस्सा न होना मौसी।"

"अच्छा, बोलो बेटा।"

"मैं कह रहा था मनुष्य को अपने मन को समझने में ही कितना समय लग जाता है। किसी दिन जब सोचता हम लोगों में कोई भी मणि का मन नहीं पा सका, तब चुप हो सकता। तुम लोग तब...।"

"नहीं बेटा, ऐसी बात न कहो—मैंने भी सहा है।"

"मन तो मिट्टी का ढेला नहीं, उठा लेने पर ही तो ले लिया नहीं जाता। मैं जानता था कि मणि ने अपने मन को अभी तक समझा नहीं है, किसी का आघात से जिस दिन समझेगी उस दिन फिर...।"

"ठीक बात है, यतीन।"

"इसीलिए उसके लड़कपन का किसी दिन बुरा नहीं माना।"

मौसी ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया; बस मन-ही-मन गहरी सांस ली। कितने ही दिन उन्होंने ध्यान दिया था कि यतीन ने बरामदे में पड़े-पड़े रात काटी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

थी, बौछार के छींटे आ रहे थे फिर भी कमरे में नहीं गया था। कितने ही दिन वह सिरदर्द में बिस्तर पर पड़ा रहता; उसकी ऐकान्तिक इच्छा होती कि मणि आकर सिर पर जरा हाथ फेर देती। लेकिन मणि सहेलियों के साथ दल बांध थियेटर जाने की तैयारी करती होती। वे यतीन को पंखा झलने आतीं, वह चिढ़कर उन्हें लौटा देता। उस चिढ़ में कितनी वेदना है, यह वह जानतीं। कितनी बार उन्होंने यतीन से कहना चाहा, "बेटा, तुम उस लड़की पर इतना अधिक ध्यान मत दो...वह थोड़ी चाहना सीखे...मनुष्य को थोड़ा रुलाना चाहिए।" लेकिन ये सब बातें कहने की नहीं होतीं, कहने पर भी कोई समझता नहीं। यतीन के मन में नारी देवता का एक पीठ स्थान था, वहीं उसने मणि को बिठाया। उस तीर्थ-क्षेत्र में नारी का अमृत पात्र हमेशा उसके भाग्य में खाली रह सकता है, यह बात सोचना उसके लिए सहज नहीं था। इसीलिए पूजा चल रही थी, अर्घ्य भर उठता, वर-प्राप्ति की आशा पराभव नहीं मान रही थी।

मौसी जब फिर सोच रही थी, यतीन सो गया है तभी सहसा वह बोल उठा, "मैं जानता हूं, तुम सोचती हो, मणि को लेकर मैं सुखी नहीं हो सका। इसी से उस पर क्रोध करती हो। लेकिन मौसी, सुख की वस्तु उन ताराओं के समान...सारे अन्धकार को लेप नहीं रखती, बीच-बीच में अवकाश रहा जाता है। जीवन में कितनी भूलें करता हूं, समझने में कितनी भूलें करता हूं, फिर भी उसके अवकाश के बीच-बीच में क्या स्वर्ग का प्रकाश आलोकित नहीं होता। कहां से मेरे मन के भीतर आज ऐसा आनन्द भर उठा है!"

मौसी आहिस्ता-आहिस्ता यतीन के सिर पर हाथ फेरने लगीं। अंधेरे में उनकी दोनों आंखों से आंसू टपक रहे थे, यह किसी ने नहीं देखा।

"मौसी, मैं सोच रही हूं, उसकी उम्र कम है, वह किस भरोसे पड़ी रहेगी?"

"कम उम्र कैसे, यतीन? यह तो उसकी ठीक उम्र है। हम लोगों ने भी तो बच्चा, कम उम्र में ही देवता को गृहस्थी की ओर खींचकर अन्तर में बिठाया है.. .उसमें क्या नुकसान हुआ है। तो भी कहती हूं, सुख की भी इतनी ज्यादा जरूरत किसलिए?"

"मौसी, मणि के मन का जैसे जगने का समय हुआ वैसे ही मैं..."

"सोचते क्यों हो, यतीन। मन यदि जगता है तो वह भी क्या कम भाग्य है?"

सहसा बहुत दिन पहले सुना हुआ बाउल का एक गाना यतीन को याद हो आया—

ओ मन, जब तू जगा नहीं रे,
तब मन का मानुष आया द्वारे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसके जाने की आहट सुन, निंदिया टूटी रे,
ओरे तेरी निंदिया टूटी रे, बड़े अंधेरे।

"मौसी, कितने बजे हैं?"

"नौ बजने वाले हैं।"

"केवल नौ! मैंने तो सोचा था, शायद दो-तीन या ऐसा ही कुछ होगा। सन्ध्या के बाद से ही मेरी रात-दोपहर शुरू होती है। फिर तुम मेरी नींद के लिए इतनी बेचैन क्यों थीं?"

कल भी सन्ध्या के बाद इसी प्रकार बात करते-करते कितनी रात तक तुम्हें फिर नींद नहीं आयी, इसलिए आज तुम्हें जल्दी सोने के लिए कह रही हूं।"

"मणि क्या सो गयी है?"

"नहीं, पहले वह तुम्हारे लिए मसूर की दाल का सूप बनाती है, तब सोने जाती है।"

"यह क्या कह रही हो, मौसी...तो क्या मणि...।"

"वही तो तुम्हारा सारा पथ्य तैयार करती है। उसको छुट्टी कहां?"

"मैं सोचता था...मणि शायद..."

"स्त्रियों को क्या यह सब सीखना पड़ता है। संकट पड़ने पर स्वयं ही कर लेती हैं।"

"आज दोपहर में जो रसेदार मौरोला[1] मछली बनी थी, उसका बड़ा ही बढ़िया स्वाद था। मैंने सोचा था, तुम्हारे हाथ की बनी हुई है।"

"हाय रे, मेरा भाग्य! मणि क्या मुझे कुछ करने देती है। तुम्हारा अंगोछा, तौलिया अपने हाथ से धोकर सुखाकर रखती है। जानती है, तुम कहीं भी कुछ गन्दा देख नहीं सकते। तुम अगर बाहर वाली बैठक को एक बार देख पाते, तो देखते, दोनों समय झाड़-पोंछकर मणि ने कैसा साफ-सुथरा कर रखा है, मैं यदि तुम्हारे इस कमरे में उसे हमेशा आने देती तो फिर क्या खैर थी। वह तो यही चाहती है।"

"तो मणि का शरीर क्या..."

"डॉक्टरों का कहना है, रोगी के कमरे में हमेशा उसको आने-जाने देने में कोई बात नहीं। उसका मन बड़ा कोमल है न, तुम्हारी तकलीफ देखकर दो दिन में ही उसका शरीर टूट जाएगा।"

---

1. मछली विशेष।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"मौसी, उसे तुम कैसे अटकाये रखती हो।"

"मुझे वह बहुत मानती है इसलिए सम्भव होता है। फिर भी बार-बार जाकर खबर दे आनी पड़ती है—यह मेरा एक काम और बढ़ा है।"

आकाश के तारे जैसे करुणा विगलित आंखों के जल के समान झलमलाने लगे। जो जीवन आज विदा लेने के पथ पर आ खड़ा हुआ है, यतीन ने मन-ही-मन कृतज्ञता से प्रणाम किया—और सामने मृत्यु ने आकर अन्धेरे के बीच से अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया है, यतीन ने स्निग्ध विश्वास के साथ उस पर अपने रोग क्लान्त हाथ को रखा।

एक बार निःश्वास छोड़, कुछ आनाकानी करता यतीन बोला, "मौसी, मणि यदि जग रही हो तो एक बार उसे..."

"बेटा, अभी बुला देती हूं।"

"मैं अधिक देर उसे इस कमरे में रखना नहीं चाहता...केवल पांच मिनट... दो-एक बात जो कहनी है..."

मौसी गहरी सांस छोड़ते हुए मणि को बुलाने गयीं। इधर यतीन की नाड़ी तेज चलने लगी। यतीन जानता है, आज तक वह मणि के साथ कभी कोई बातचीत अच्छी तरह नहीं जमा सका। जब दो यंत्र दो भिन्न सुर में बंधे हों तो उनका एक साथ आलाप साधना बड़ा कठिन है। मणि अपनी सहेलियों के साथ लगातार बकबक करती, हंसती, जिसे दूर से सुन-सुनकर यतीन का मन कितनी बार ईर्ष्या से दग्ध हुआ है। यतीन ने अपने को ही दोष दिया—वह क्यों नहीं अति साधारण जो-सो को लेकर बात कर सकता। कर नहीं सकता हो, ऐसा भी तो नहीं है, अपने बन्धु-बान्धवों के साथ यतीन सामान्य विषयों को लेकर क्या बातचीत नहीं करता? किन्तु पुरुषों का जो-सो तो स्त्रियों के जो-सो के साथ ठीक मिलता नहीं। बड़ी बात तो अकेले लगातार कहते चल सकते हैं, दूसरा मन लगा रहा है या नहीं, इस पर ध्यान नहीं भी दे सकते हैं, किन्तु छोटी-मोटी बातों में हमेशा दोनों पक्षों का योग आवश्यक है। वंशी अकेले ही बज सकती है किन्तु दो के मेल के बिना करताल की झनझनाहट जमती नहीं। इसलिए कितनी ही बार सन्ध्या समय जब यतीन मणि के साथ चटाई बिछाकर खुले बरामदे में बैठता, तो दो-चार बातों के ताने-बाने के बाद ही बात का सूत्र बिल्कुल छिन्न-भिन्न होकर वहां अवकाश-सा हो जाता; उसके बाद तो सन्ध्या की नीरवता जैसे लज्जा से मरी जाती हो! यतीन ने समझा है, मणि के यहां से चले जाने पर ही जैसे मणि के लिए मुक्ति है, मन-ही-मन उसने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कामना की है, भला हो अगर अभी कोई तीसरा व्यक्ति यहां आ जाये। क्योंकि, दो में बातचीत मुश्किल है, तीन में सहज।

मणि के आने पर आज कैसे बातचीत शुरू करेगा...यतीन यही सोचने लगा। सोचने पर बातें जाने कैसी अस्वाभाविक रूप में बड़ी हो जाती हैं...वे सब बातें नहीं चलेंगी। यतीन को आशंका होने लगी कि आज की बात के पांच मिनट भी यों ही व्यर्थ हो जायेंगे। लेकिन अब उसके जीवन के इस प्रकार के निराले पांच मिनट और कितने बाकी रहे!

"यह क्या बहू, कहीं जा रही हो क्या?"

"सीतारामपुर जाऊंगी।"

"यह कैसी बात! किसके साथ जाओगी?"

"अनाथ ले जा रहा है।"

"मेरी रानी बहू, तुम जाना, मैं तुम्हें मना नहीं करूंगी...पर आज नहीं।"

"टिकट खरीदकर आरक्षण करवा लिया है।"

"होने दो, वह नुकसान तो कोई बड़ी बात नहीं, सहा जा सकता है...तुम कल सवेरे ही चली जाना...आज मत जाओ।"

"मौसी, मैं तुम लोगों का तिथिवार नहीं मानती, आज जाने में क्या दोष है?"

"यतीन ने तुम्हें बुलाया है, तुम्हारे साथ वह कुछ बात करना चाहता है।"

"तो ठीक है, अभी तो थोड़ा समय बाकी है...मैं उनसे कहे आती हूं।"

"नहीं, तुम्हें यह नहीं बताना है कि तुम जा रही हो।"

"तो ठीक है, मैं कुछ कहूंगी नहीं, लेकिन मैं अब देर नहीं कर सकती। कल ही अन्नप्राशन है...आज न जाने से नहीं चलेगा।"

"मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, बहू, आज एक दिन के लिए मेरी बात रखो। आज मन को थोड़ा शान्त करके यतीन के पास आ बैठो...कोई जल्दीबाजी मत करो।"

"तो क्या करूं, बताओ, गाड़ी तो मेरे लिए रुकी नहीं रहेगी। अनाथ चला गया है ...दस मिनट बाद आकर मुझे ले जाएगा। इसी बीच उनसे मिलने का काम निपटा लूं।"

"नहीं, तब रहने दो। तुम जाओ। इस तरह तो उसके पास न जाने दूंगी। अरी अभागिन, तूने जिसे इतना दुःख दिया है वह तो सब विसर्जन दे। आज के बाद कल चला जायेगा...पर तू जितने दिन जीती रहेगी आज की बात की तुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हमेशा याद रखनी होगी ...भगवान है और अवश्य है, यह बात एक दिन समझेगी।"

"मौसी, मैं कहती हूं मुझे इस तरह से शाप न दो।"

"अरे मेरे लाल रे, अब और क्यों जीवित है रे! पाप का तो अन्त नहीं...मैं और अटकाये रख नहीं सकी।"

मौसी कुछ देर बाद रोगी के कमरे में लौटी। उम्मीद की थी, यतीन सो जायेगा। पर कमरे में घुसते ही देखा...यतीन बिस्तर पर हिला-डुला। मौसी बोली, "देख न, एक झमेला खड़ा कर दिया है।"

"क्या हुआ। मणि नहीं आयी? इतनी देर क्यों लगा दी, मौसी?"

"जाकर देखती क्या हूं कि वह तुम्हारे लिए दूध गर्म करने जाकर उसे जला बैठी है इसीलिए खूब रो रही है। मैं बोली, इसमें क्या है, और भी तो दूध रखा है। पर, असावधानीवश उसने तुम्हारे पथ्य का दूध जला डाला है, बहू की यह लज्जा कैसे भी नहीं ज़ाती। मैंने बड़ी मुश्किल से उसे किसी तरह शान्त किया है और बिस्तर पर लिटा आयी हूं। आज उसे नहीं लायी। वह थोड़ा सो ले।"

मणि आयी नहीं, यह यतीन के हृदय में जैसे चुभा वैसे ही उसे जैसे चैन भी मिला। उसे आशंका थी, कहीं मणि के सशरीर आने पर मणि की ध्यान माधुरी मात्र के प्रति अन्याय न हो जाये। क्योंकि उसके जीवन में ऐसा बहुत बार घटित हुआ है। दूध जलाकर मणि का कोमल हृदय अनुताप से व्यथित है, इसी के रसमात्र से उसका हृदय भर आने लगा।

"मौसी!"

"क्या है, बेटा?"

"मैं अच्छी तरह जान रहा हूं, मेरे दिन समाप्त हो आये हैं। लेकिन मेरे मन में कोई खेद नहीं। तुम मेरे लिए शोक मत करना।"

"नहीं बेटे, मैं शोक नहीं करूंगी। इस बात को मैं नहीं मानती कि जीवन में ही मंगल है और मरण में नहीं।"

"मौसी, मैं तुमसे सच कहता हूं, मृत्यु मुझे मधुर लग रही है।"

अन्धकार भरे आकाश की ओर ताकते हुए यतीन देख रहा था, उसकी मणि ही आज मृत्यु का वेश धारण किये आ खड़ी हुई है। आज वह अक्षय यौवन से पूर्ण है—वह गृहिणी, वह जननी, वह रूपसी, वह कल्याणी है। उसके ही खुले बालों पर आकाश के वे तारे लक्ष्मी के स्वहस्त के आशीर्वाद की माला है। उन दोनों के सिर के ऊपर इस अन्धकार के मंगल परिधान फैलाये हुए फिर जैसे नये रूप में उनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शुभ दृष्टि[1] हुई। रात का यह विपुल अन्धकार मणि के अनिमेष प्रेम की चितवन में भर गया है। इस घर की वधू-मणि, यह छोटी-सी मणि; आज इसने विश्वरूप धारण किया है; जीवन-मरण के संगम-तीर्थ पर नक्षत्रों की वेदी पर वह जा बैठी है और निस्तब्ध रात मंगलघट के समान पुण्यधारा से भर उठी। यतीन हाथ जोड़े मन-ही-मन बोला, 'इतने दिनों के बाद घूंघट खुला, इस घोर अन्धकार में आवरण हटा। बहुत रुलाया है...सुन्दर, हे सुन्दर, तुम और छलना नहीं कर सकोगे।'

"कष्ट तो हो रहा है, मौसी, पर जितना कष्ट तुम सोच रही हो उतना कुछ भी नहीं। मेरे साथ मेरे कष्टों का एक-एक कर जैसे विच्छेद हुआ जा रहा है। बोझ से लदी नौका के समान इतने दिन वह मेरे जीवन-जहाज के साथ बंधी थी, आज जैसे बन्धन छिन्न हो गया, वह मेरा सब बोझ ले दूर तिर चली। अभी तक उसे देख पा रहा हूं, पर अब वह जैसे मेरी नहीं प्रतीत हो रही है...इन दो दिनों से मणि को एक बार भी नहीं देखा, मौसी।"

"पीठ के पीछे दूसरा तकिया लगा दूं, यतीन?"

"मुझे लग रहा है मौसी, मणि भी जैसे चली गयी है। मेरी बन्धन दुःख भरी नौका के समान छिन्न हो चला है।"

"बेटा, थोड़ा-सा बेदाने का रस पी ले, तेरा गला सूख रहा है।"

"मेरा वसीयतनामा कल लिखा जा चुका है...वह क्या मैंने तुम्हें दिखाया है... ठीक याद नहीं आ रहा है।"

"मुझे देखने की जरूरत नहीं है, यतीन।"

"मां की जब मृत्यु हुई मेरे पास तो कुछ भी नहीं था। तुम्हारे घर का खाया-पीया और तुम्हारे ही हाथों पला-बढ़ा। इसलिए कह रहा हूं..."

"यह कैसी बात कर रहे हो! मेरे पास तो बस यह एक मकान था और थोड़ी-सी जायदाद भर थी। बाकी तो सारा तुम्हारा अपने रोजगार का ही है।"

"लेकिन यह घर तो..."

"यह घर मेरा कैसा! कितने दालान तुमने बनवाये हैं, मेरा जितना था, वह कहां है, खोजे ही नहीं मिलेगा।"

"मणि तुम्हें भीतर-ही-भीतर बहुत..."

"वह क्या मैं नहीं जानती, यतीन। तुम अब सो जाओ।"

---

1. विवाह के समय वर वधू का परस्पर प्रथम दर्शन, एक अनुष्ठान विशेष।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"मैंने मणि के नाम ही सब कुछ लिखा जरूर है, पर यह सब रहा तुम्हारा, मौसी। वह तो तुम्हारी कभी अवमानना नहीं करेगी।"

"इसके लिए इतनी चिन्ता क्यों कर रहा है, बेटे!"

"तुम्हारा आशीर्वाद ही मेरा सब कुछ है, तुम मेरे वसीयतनामे को देखकर कभी ऐसी बात न सोचना..."

"यह कैसी बात है, यतीन! तुम्हारी चीज तुमने मणि को दी है, इसके लिए मैं कुछ सोचूंगी! मेरा ऐसा जलने वाला मन! तुम्हारी चीज उसके नाम लिखकर दे जा सकने में तुम्हें जो सुख है, वही तो मेरे सब सुखों से ज्यादा है, बेटे!"

"पर, तुम्हें भी मैं..."

"देख यतीन, अब मैं नाराज हो जाऊंगी। तू तो चला जायेगा, और मुझे रुपयों का भुलावा देकर अकेला छोड़ जायेगा।"

"मौसी, रुपये से भी और बड़ा यदि कुछ तुम्हें...."

"दिया है, यतीन, तूने बहुत दिया है। मेरा सूना घर तू ही तो भरे हुआ था, यह मेरा अनेक जन्मों का भाग्य है। इतने दिनों तक तो हृदय भरकर पाया है, आज मेरा पाना अगर समाप्त हो गया हो तो शिकायत नहीं करूंगी। दो, लिख दो, सब लिख दो ...घर...मकान, माल-असबाब, घोड़ागाड़ी, गांव-जमींदारी...जो है सब मणि के नाम लिख दो...यह सब बोझ मैं वहन नहीं कर सकूंगी।"

"तुम्हारी भोग में रुचि नहीं...पर मणि की उम्र छोटी है इसलिए..."

"ऐसी बात मत बोल, मत बोल! धन-सम्पत्ति देना चाहे तो दे पर भोग करना..."

"भोग क्यों न करे, मौसी।"

"नहीं रे नहीं...नहीं कर सकेगी, नहीं कर सकेगी। मैं कहती हूं, उसके मुंह में रुचेगा नहीं! गला सूखकर काठ हो जायेगा, किसी में कोई रस नहीं पा सकेगी।"

यतीन चुप हो रहा। उसके अभाव में संसार मणि के लिए एकदम बेस्वाद हो जायेगा, यह बात सच है या झूठ, सुखदायी या दुःखदायी—यह जैसे वह सोचकर तय नहीं कर पाया। आकाश के तारे जैसे उसके हृदय के मध्य आकर फुसफुसाकर बोले, 'ऐसा ही है...हम तो हजार-हजार सालों में देखते आ रहे हैं, संसार-व्यापी यह सारा आयोजन इतना ही बड़ा प्रपंच है।'

यतीन एक गहरी सांस छोड़ते हुए बोला, "देने जैसी तो मेरी कोई चीज ही नहीं जो दे जा सकता हूं।"

"क्या कम दे जा रहे हो, बेटे! यह घर-मकान, रुपये-पैसे के बहाने तुम उसे क्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिये जा रहे हो इसका मूल्य वह क्या किसी दिन नहीं समझेगी? जो कुछ तुमने दिया है, उसे सिर झुकाकर लेने की शक्ति विधाता उसे दे, मैं उसे यही आशीर्वाद देती हूं।"

"और थोड़ा-सा वेदाने का रस दो, मेरा गला सूख रहा है। मणि क्या कल आयी थी...मुझे ठीक से याद नहीं आ रहा है।"

"आयी थी। तब तुम सो गये थे। तुम्हारे सिरहाने बैठे बहुत देर तक तुम्हें पंखा झलती रही थी फिर धोबी को तुम्हारे कपड़े देने चली गयी।"

"आश्चर्य है! शायद ठीक उसी समय मैं स्वप्न देख रहा था, जैसे मणि मेरे कमरे में आना चाह रही है...दरवाजा जरा-सा खुला है...वह उसे ठेलती जा रही है, पर कैसे भी उससे अधिक खुल नहीं रहा है। पर मौसी, तुम लोग थोड़ी ज्यादती कर रही हो. ..उसे देखने तो दो कि मैं मर रहा हूं...नहीं तो सहसा मृत्यु को वह सह नहीं सकेगी।"

"बेटे, तेरे पैरों पर यह ऊनी शाल डाल दूं...पैर के तलवे ठण्डे हो गये हैं।"

"नहीं, मौसी, शरीर पर कुछ डालना अच्छा नहीं लग रहा है।"

"जानता है, यतीन, यह शाल मणि ने बुना है, इतने दिनों तक रात-रातभर जगकर उसने तुम्हारे लिए तैयार किया है। कल ही बनकर तैयार हुआ है।"

यतीन ने शाल को लेकर दोनों हाथों से थोड़ा हिलाया-डुलाया। लगा, ऊन की कोमलता जैसे मणि के मन की चीज है, उसने यतीन को याद करके रात जगकर इसे बुना है, उसके मन की वह प्रेम-भावना इसके साथ बुनी गयी है। केवल ऊन से नहीं, मणि की कोमल अंगुलियों के स्पर्श से यह बुना गया है। इसलिए मौसी ने जब शाल को उसके पैरों पर डाल दिया तब उसे लगा, मणि ही रात-रातभर जगकर उसकी पदसेवा कर रही है।

"लेकिन मौसी, मैं तो जानता था कि मणि बुनाई नहीं जानती...उसे बुनाई पसन्द ही नहीं।"

"मन लगाने पर सीखने में कितनी देर लगती है। उसे बताना पड़ा है...उसमें कई जगह बुनाई की भूलें भी हैं।"

"अरे उन भूलों को छोड़ दो न। इसे पेरिस की नुमाइश में तो भेजना नहीं है. ..गलत बुनाई से भी मेरे पैर को अच्छी तरह ढका जा सकेगा।"

बुनाई में अनेक गलतियां हैं, यह सोचकर यतीन को और अधिक प्रसन्नता हुई। बेचारी मणि बुन नहीं सकती, जानती नहीं, बार-बार गलतियां कर रही है, फिर भी धैर्यपूर्वक रात-रातभर बुनती रही है...यह कल्पना उसके लिए बड़ी करुण, बड़ी मधुर लगी। इन भूलों से भरे शाल को उसने फिर से थोड़ा हिलाया-डुलाया।

"मौसी, डॉक्टर क्या नीचे के कमरे में हैं?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"हां, यतीन, आज रात यहीं रहेंगे।"

"लेकिन, मुझे बेकार में नींद की दवा न दी जाये। तुमने देखा तो है, उससे मुझे नींद नहीं आती, केवल कष्ट बढ़ जाता है। मुझे अच्छी तरह जगा रहने दो। जानती हो मौसी, वैशाख-द्वादशी की रात हमारा विवाह हुआ था...कल वही द्वादशी है—कल के दिन उस रात के सारे तारे आकाश में प्रज्ज्वलित होंगे। मणि को शायद याद न हो, मैं आज उसे इस बात का स्मरण दिलाना चाहूंगा; उसे तुम केवल दो मिनट के लिए बुला दो न! चुप क्यों हो? शायद डॉक्टरों ने तुम लोगों से कहा है कि मेरा शरीर दुर्बल है, इस समय जिससे मेरे मन पर कोई...पर मैं तुम्हें निश्चय के साथ बता रहा हूं, मौसी, आज रात उसके साथ दो बातें कर लेने पर मेरा मन एकदम शान्त हो जाएगा...तब फिर शायद सोने की दवा न देनी पड़े। मेरा मन उससे कुछ कहना चाह रहा है इसीलिए इन दो रातों में मैं सो नहीं सका। मौसी, तुम इस तरह से रोओ मत। मैं बिल्कुल ठीक हूं, आज मेरा मन जैसे परिपूर्ण हो उठा है, ऐसा मेरे जीवन में कभी नहीं हुआ। इसीलिए मैं मणि को बुला रहा हूं। लग रहा है, जैसे आज अपने परिपूर्ण हृदय को उसके हाथों सौंपकर जा सकूंगा। उसे बहुत बार बहुत कुछ कहना चाहा था पर कह नहीं सका, अब तो एक क्षण की भी देर करनी नहीं है, उसे अभी फौरन बुला दो...इसके बाद फिर समय नहीं मिलेगा।. ..नहीं मौसी, तुम्हारा यह रोना-धोना मैं सह नहीं सकूंगा। इतने दिनों में तुम शान्त थी, आज तुम्हें ऐसा क्यों हुआ?"

"अरे यतीन, सोचा था मेरा सब रोना चुक गया है...पर देख रही हूं, अभी भी बाकी है...आज और नहीं सह पा रही हूं।"

"मणि को बुला दो...उससे कह दूंगा, कल की रात के लिए जैसे..."

"जा रही हूं, बेटा। शम्भू दरवाजे के पास है, यदि कोई जरूरत हो उसे बुला लेना।"

मौसी मणि के सोने के कमरे में जा फर्श पर बैठकर पुकारने लगीं, "अरे आ...एक बार आ...अरी राक्षसी आ, जिसने तुझे अपना सब कुछ सौंप दिया है उसकी अन्तिम बात मान ले...वह मरने को है, उसे और न मार।"

यतीन पैरों की आहट से चौंक पड़ा, बोला, "मणि!"

"नहीं, मैं शम्भू हूं। आप मुझे बुला रहे थे?"

"एक बार अपनी बहूजी को तो बुला दे।"

"किसे?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"बहूजी को।"

"वे तो अभी लौटी नहीं हैं।"

"कहां गयी हैं?"

"सीतारामपुर।"

"आज ही गयी हैं?"

"नहीं, आज तीन दिन हो गये।"

क्षणभर के लिए यतीन का सारा शरीर जैसे अवश-सा हो गया...आंखों के आगे अंधेरा छा गया। अभी तक वह तकिये का सहारा लेकर बैठा था, लेट गया। पैरों पर वही ऊनी शाल ढका था, उसे पैर से ठेलकर फेंक दिया।

बहुत देर बाद जब मौसी आयीं, यतीन ने मणि की कोई भी बात नहीं कही। मौसी ने सोचा, उस बात की उसे याद नहीं रही।

अचानक ही यतीन एक बार बोल उठा, "मौसी, तुम्हें क्या मैंने अपने उस दिन के स्वप्न के बारे में बताया था?"

"कौन-सा स्वप्न?"

"मणि मेरे कमरे में आने के लिए जैसे दरवाजा ठेल रही है और दरवाजा कैसे भी इससे अधिक खुला नहीं, वह बाहर खड़ी देखती रही, लेकिन किसी भी तरह अन्दर घुस नहीं पायी। मणि सदा मेरे कमरे के बाहर ही खड़ी रही। उसे बहुतेरा बुलाया, लेकिन यहां उसके लिए जगह नहीं बनी।"

मौसी बिना कुछ बोले चुप रहीं। सोचा, 'यतीन के लिए झूठ के द्वारा जो थोड़ा-सा स्वर्ग रच रही थीं, वह टिका नहीं। दुःख जब आये तब उसे स्वीकारने में ही भलाई है ...प्रवंचना द्वारा विधाता की मार को रोकने की कोशिश बेकार है।'

"मौसी, तुमसे जो स्नेह पाया है वह मेरे जन्म-जन्मान्तर का पाथेय है, मेरा सारा जीवनभर ले चला। अगले जन्म में तुम अवश्य मेरी कन्या होकर जन्मोगी, मैं तुम्हें अपने सीने पर रखकर पालूंगा।"

"क्या कह रहा है यतीन, फिर लड़की का जन्म लूंगी। नहीं रे, लड़के का ही जन्म लूंगी और तेरी गोद में पलूंगी...यही कामना क्यों नहीं करता।"

"नहीं, नहीं, लड़का नहीं। बचपन में तुम जैसी सुन्दरी थी वैसी ही अपरूप सुन्दरी के रूप में तुम मेरे घर में आओगी। मुझे याद है, मैं तुम्हें कैसे सजाऊंगा।"

"अब और अधिक मत बोल, यतीन, मत बक...थोड़ा सो ले।"

"मैं तुम्हारा नाम रखूंगा लक्ष्मी रानी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"यह तो आजकल रखा जाने वाला नाम नहीं।"

"नहीं, आजकल का नाम नहीं। मौसी, तुम मेरी पुरातनकाल की हो...उस पुरातनकाल को लिए ही तुम मेरे घर में आना।"

"तेरे घर में कन्या-दायित्व का दुःख लेकर आऊं, यह कामना तो मैं नहीं कर पा रही।"

"मौसी, तुम मुझे दुर्बल समझती हो? मुझे दुःख से बचाना चाहती हो।"

"बेटा, मेरा तो नारी मन है, मैं ही दुर्बल हूं...इसीलिए मैंने बहुत डर-डर के तुझे सभी दुःखों से हमेशा बचाना चाहा है। लेकिन, मेरी क्या हस्ती है। कुछ भी नहीं कर सकी।"

"मौसी, इस जीवन की शिक्षा को इसी जीवन में लागू करने का मुझे समय नहीं मिला। लेकिन, यह सारा का सारा ही जमा रहा, अगली बार मनुष्य क्या कर सकता है, उसे मैं कर दिखाऊंगा। जीवन पर्यन्त अपनी ही ओर तकते रहने में कितना धोखा है, यह मैंने समझ लिया है।"

"जो भी कहो, बेटे, तुमने खुद कुछ लिया नहीं, दूसरे को ही सब दिया है।"

"मौसी, मुझे एक बात का गर्व है, मैंने सुख पाने के लिए कभी जबर्दस्ती नहीं की ...किसी दिन यह नहीं कहा कि जहां मेरा हक है वहां मैं जोर-जबर्दस्ती करूंगा। जो नहीं मिला, उसके लिए छीना-झपटी नहीं की। मैंने वह चीज चाही थी जिस पर किसी का अधिकार नहीं...सारा जीवन हाथ जोड़े प्रतीक्षा की थी, मिथ्या को चाहा नहीं इसीलिए इतने दिन ऐसे ही बैठे रहना पड़ा...अब शायद सत्य की दया हो। वह कौन...मौसी, वह कौन?"

"कहां, कोई तो नहीं, यतीन।"

"मौसी, तुम एक बार वह कमरा देख आओ तो, मैंने जैसे..."

"नहीं बेटे, कोई तो नहीं दीख रहा।"

"पर मैंने स्पष्ट जैसे..."

"कुछ नहीं यतीन...अरे हां, देखो, डॉक्टर बाबू आये हैं।"

"देखिये, आपके पास रहने पर ये बहुत अधिक बातें करते हैं। कई रातें तो इसी प्रकार जगकर ही काटीं। आप सोने जाएं, मेरा वह आदमी यहां रहेगा।"

"नहीं मौसी, नहीं, तुम नहीं जा सकोगी।"

"अच्छा बेटे, मैं...न हो उस कोने में जाकर बैठती हूं।"

"नहीं, नहीं, तुम मेरे पास ही बैठी रहो...मैं तुम्हारे इस हाथ को कैसे भी नहीं छोडूंगा...अन्त तक नहीं। मैं तुम्हारे ही हाथों? पला हूं, तुम्हारे ही हाथों से भगवान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मुझे लेंगे।"

"अच्छी बात है, पर आप बात न करें, यतीन बाबू। उस दवा को पिलाने का समय हो गया..."

"समय हो गया...? झूठ है। समय पार हो गया...अब दवा पिलाना केवल धोखा देकर सान्त्वना देना है। मुझे उसकी कोई जरूरत नहीं। मुझे मरने का भय नहीं। मौसी, यम का इलाज चल रहा है, उस पर से फिर सब डॉक्टरों को क्यों इकट्ठा कर लिया है ...विदा कर दो, सबको विदा कर दो। इस समय मेरी एकमात्र तुम...मुझे और किसी की जरूरत नहीं...किसी की नहीं...किसी मिथ्या की भी नहीं।"

"आपकी यह उत्तेजना ठीक नहीं है।"

"तो तुम लोग जाओ, मुझे उत्तेजित न करो...मौसी, डॉक्टर चले गये अच्छा, तब तुम इस बिस्तर पर आकर बैठो...मैं तुम्हारी गोद में सिर रखकर सोऊंगा।"

"अच्छा, बेटा, सो जा, राजा बेटे, थोड़ा सो जा।"

"नहीं, मौसी, सोने को न कहो...सोते-सोते शायद फिर नींद नहीं खुलेगी। अभी भी और थोड़ी देर मेरे जगे रहने की जरूरत है।...तुम आहट नहीं सुन पा रही हो? लो, सुनो, वह आ रही है। अभी आयेगी।"

"यतीन बेटे, जरा आंखें खोलकर तो देख...देख, वह आयी है। एक बार तो देख।"

"कौन आया है? स्वप्न?"

"स्वप्न नहीं बेटा, मणि आयी है। तुम्हारे ससुर आये हैं।"

"तुम कौन हो?"

"पहचान नहीं रहे हो, बेटे, वही तो तुम्हारी मणि—"

"मणि, वह दरवाजा क्या पूरा खुल गया है?"

"पूरा खुला है, मेरे बेटे, पूरा खुला है।"

"नहीं, मौसी, मेरे पैर पर वह शाल नहीं, वह शाल नहीं। वह शाल मिथ्या है। वह शाल धोखा है।"

शाल नहीं, यतीन। बहू तेरे पैरों पर गिरी है...उसके सिर पर हाथ रखकर जरा आशीर्वाद दे। इस तरह से रो मत बहू, रोने का समय आ रहा है...थोड़ी देर चुप हो जा।"

आश्विन, 1321 (बंगाब्द)
1917 ई.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पहला नम्बर

मैं तम्बाकू तक नहीं पीता। मेरा एक आकाशभेदी नशा है, उसी के प्रभाव से अन्य सभी नशे एकदम जड़ से सूखकर नष्ट हो गये हैं। वह मेरा किताब पढ़ने का नशा है। मेरे जीवन का मंत्र यह है--

यावज्जीवेत् कथंचिन्न जीवेत्
ऋणं कृत्वा बहिं पठेत्।

(अर्थात् जब तक जिएं या ना जिएं कर्ज लेकर पुस्तक पढ़ें।)

जिनको घूमने का बहुत अधिक शौक है, पर पाथेय का अभाव है, वे जिस प्रकार टाइम टेबल पढ़ते हैं छोटी अवस्था में आर्थिक अभाव के दिनों में मैं भी उसी प्रकार पुस्तकों की सूची पढ़ा करता था। मेरे भैया के एक चचेरे बंगाली ससुर हैं जो किताबें प्रकाशित होते ही बिना सोचे-विचारे खरीदते थे और उनका सबसे बड़ा अहंकार यह था कि उन किताबों में से एक भी आज तक खो नहीं पायी। शायद बंगाल में ऐसा सौभाग्य किसी दूसरे का नहीं है। कारण, धन-बल, आयु-बल, भुलक्कड़, व्यक्ति का छाता-बल, संसार में जितनी खो जाने वाली वस्तुएं हैं उनमें से बंगाली की किताबें सर्वोपरि हैं। इसी से समझा जा सकता है कि भैया के चचेरे ससुर की पुस्तकों की अल्मारी की चाबी उनकी चचिया सासजी के लिए भी दुर्लभ थी। 'दीन यथा राजेन्द्र संग में' जब बाल्यकाल में मैं भैया के साथ उनकी ससुराल जाता था उन रुद्ध द्वार अल्मारियों की ओर ताकते हुए समय बिताया करता था। तब मेरी आंखों की जीभ में पानी भर आता। इतना कहना ही काफी होगा कि बचपन से ही इतना असम्भव रूप से अधिक पढ़ा है कि पास नहीं हो सका। जितना कम पढ़ना पास करने के लिए अत्यावश्यक था, वह समय मेरे पास नहीं था।

फेल हुआ बालक होने के कारण मेरी एक बहुत बड़ी सुविधा यह थी कि विश्वविद्यालय के घड़े से भरे गये विद्या-जल से मैंने कभी स्नान नहीं किया--स्रोत के जल में अवगाहन ही मेरा अभ्यास है। आजकल मेरे पास बहुत-से एम॰ ए॰, बी॰ ए॰, आते रहते हैं, वे जितने भी आधुनिक क्यों न हों, आज भी वे विक्टोरिया युग में ही नजरबन्द हुए बैठे हैं। उनकी विद्या का जगत् टॉलमी की पृथ्वी के समान अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के साथ एकदम जैसे स्क्रू से कसा हुआ है, बंगाल के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

छात्रों का दल पुत्र-पौत्रादि क्रम में सदा उसकी ही जैसे प्रदक्षिणा करता रहेगा। उनकी मानस-रथयात्रा की गाड़ी बड़े कष्टों से मिल-बेन्थाम को पार करती कार्लाइल-रस्किन तक आकर एक ओर को झुक पड़ी है। मास्टर साहब के व्याख्यान के बेड़े के बाहर वे साहसपूर्वक हवा खाने नहीं निकल पाते हैं।

किन्तु, हम जिस देश के साहित्य को खूंटे के समान बनाकर मन को उससे बांध रख जुगाली कराते हैं उस देश का साहित्य तो खम्भा नहीं है—वह तो वहां के प्राणों के साथ-साथ चल रहा है। वैसा प्राण हो सकता है मेरा न हो, किन्तु उस चाल का अनुसरण करने की मैंने चेष्टा की है। मैंने अपनी चेष्टा से फ्रेंच, जर्मन, इतालवी सीख ली है, हाल ही में रूसी सीखना शुरू किया था। आधुनिकता की एक्सप्रेस गाड़ी जिसने घंटे में साठ मील के वेग से भी अधिक दौड़ लगायी है, मैंने उसी का टिकट खरीदा है। इसलिए मैं हक्सले-डार्विन तक आकर भी रुक नहीं गया, टेनीसन की भी समीक्षा करने से हिचका नहीं, यहां तक कि इब्सन-मेटरलिक के नाम की नौका को पकड़ अपने मासिक-साहित्य में सस्ती प्रसिद्धि के बंधे कारोबार को चलाने में मुझे संकोच मालूम होता है।

किसी दिन मनुष्यों का एक दल मुझे भी खोजकर पहचान लेगा, यह मेरे लिए आशातीत था। मैं देख रहा हूं, बंगाल में ऐसे लड़के भी दो-चार मिल ही जाते हैं जो कॉलेज भी नहीं छोड़ते, मगर कॉलेज के बाहर सरस्वती की जो वीणा बजती है उसके स्वर में बेचैन हो उठते हैं। क्रमशः वही लोग एक-दो करके मेरे कमरे में आ जुटने लगे।

मेरा एक दूसरा नशा शुरू हुआ—भर्त्सना। शिष्ट भाषा में उसे आलोचना कह सकते हैं। देश में चारों तरफ सामयिक और असामयिक साहित्य में जो सब बातें सुनता हूं वह एक ओर इतना कच्चा, दूसरी ओर इतना पुराना कि बीच-बीच में उसके दमघोंटू पिचपिची उमस को उदार चिन्ता की खुली हवा में बिता देने की इच्छा होती है। मगर लिखने में आलस्य लगता है। इसलिए मन लगाकर बात सुने, ऐसा व्यक्ति पकड़ में आये तो बच जाऊं।

मेरा दल बढ़ने लगा। मैं अपनी गली के दूसरे नम्बर घर में रहता था, यहां मेरा नाम अद्वैतचरण है, इसलिए मेरे दल का नाम हो गया द्वैताद्वैत-सम्प्रदाय। हमारे इस सम्प्रदाय के किसी को समय-असमय का ज्ञान नहीं था। कोई पंच किये ट्राम के टिकट से पृष्ठ चिह्नित कोई नयी प्रकाशित अंग्रेजी पुस्तक हाथ में लिए सवेरे ही आ पहुंचता—बहस करते-करते एक बज जाता, फिर भी तर्क समाप्त नहीं होता, तब तक दूसरा हाल ही कॉलेज में नोट उतारी कापी को लिए हुए अपराह्न में आ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपस्थित होता और रात दो बजे तक उठने का नाम नहीं लेता। अक्सर मैं उन्हें खाने के लिए कहता। क्योंकि मैंने देखा है कि जो साहित्य-चर्चा करते हैं उनकी रसज्ञता की शक्ति केवल मस्तिष्क में ही नहीं, रसना में भी खूब प्रबल रहती है। पर जिनके भरोसे इन सारे भूखमरों को जब-तब खाने को कहता उनकी दशा क्या होती होगी, इसे मैं बराबर महत्त्वहीन ही सोचता रहा। संसार में भाव और ज्ञान के जो बड़े-बड़े कुलाल-चक्र घूम रहे हैं, जिसमें मानव सभ्यता थोड़ी कुछ तैयार होकर आग में तपकर पक्की हो उठी है, कुछेक बच्चे में ही टूट-टूटकर गिर पड़े हैं, उसके लिए घर-गृहस्थी की हलचल और रसोई के चूल्हे की आग क्या दृष्टि में पड़ती है।

भवानी की भ्रू-भंगिमा भव ही जानते हैं—ऐसी बात काव्य में पढ़ी है। किन्तु भव के तीन नेत्र हैं, मेरा तो मात्र एक जोड़ा, वह दृष्टि-शक्ति भी पुस्तक पढ़ते-पढ़ते क्षीण हो गयी है। अतएव, असमय भोज का आयोजन करने को कहने पर मेरी पत्नी की भृकुटी में कैसी चंचलता उत्पन्न होती—यह मेरी नजर में नहीं आता। क्रमशः उन्होंने समझ लिया था, मेरे घर में असमय ही समय और अनियम ही नियम है। मेरी गृहस्थी की घड़ी बेताल है और गृहस्थी के कोटर-कोटर में उनचास पवन का घोंसला है। मेरी जो कुछ अर्थ-सामर्थ्य थी, उसकी एक ही खुली ड्रेन थी जो पुस्तक खरीदने की ओर थी, गृहस्थी के अन्यान्य प्रयोजन लालची कुत्ते के समान मेरे शौक के इस विलायती कुत्ते की जूठन चाट और सूंघकर कैसे बचे थे, इसका रहस्य मेरे से अधिक मेरी पत्नी ही जानती थी।

विभिन्न ज्ञान के विषयों की चर्चा मेरे जैसे व्यक्ति के लिए निहायत जरूरी थी। विद्या जाहिर करने के लिए नहीं और दूसरे का उपकार करने के लिए भी नहीं; वह है बातें कर-करके चिन्तन करना, ज्ञान हजम करने की एक व्यायाम-प्रणाली। मैं यदि लेखक अथवा अध्यापक होता तो निन्दा मेरे लिए व्यर्थ होती। जिनका बंधा परिश्रम है, भोजन हजम करने के लिए उन्हें उपाय नहीं ढूंढ़ना पड़ता—जो घर बैठे-बैठे खाते हैं, उनके लिए कम-से-कम छत पर तेजी से टहलना जरूरी है। मेरी वैसी ही दशा है। इसलिए जब द्वैत दल इकट्ठा नहीं हुआ था तब मेरी एकमात्र द्वैत थी मेरी पत्नी। उन्होंने मेरे इस मानसिक परिपाक की सशब्द प्रक्रिया को दीर्घकाल तक चुपचाप वहन किया। यद्यपि वे मिल की साड़ी पहनती और उनके गहने का सोना असली और ठोस नहीं था, फिर भी पति से जो बातचीत सुनतीं, सौजात्य विद्या (Eugenics) कहिए या मेण्डल तत्त्व ही कह लीजिए अथवा गणित विषयक युक्तिशास्त्र ही कहिए, उसमें सस्ता या मिलावट कुछ भी नहीं था। मेरे दल की वृद्धि के बाद से वे इन आलोचनाओं से वंचित रहीं, किन्तु इसलिए उनसे कभी कोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शिकायत नहीं सुनी।

मेरी पत्नी का नाम है अनिला। इस शब्द का क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता, मेरे ससुर जानते हों ऐसा भी नहीं। शब्द सुनने में मधुर है और अचानक लगता है, उसका कोई अर्थ है। शब्दकोश जो भी कहे नाम का असली अर्थ है—मेरी पत्नी, जो अपने पिता की लाड़ली बेटी है। मेरी सास जब ढाई वर्ष के बालक को छोड़कर मरीं तो उस छोटे बच्चे की देखभाल के मनोरम उपाय-स्वरूप मेरे ससुर ने दूसरा विवाह किया। उनका उदेश्य कितना सफल हुआ यह इससे ही समझा जा सकेगा कि अपनी मृत्यु से दो दिन पूर्व उन्होंने अनिला का हाथ पकड़कर कहा था, "बेटी, मैं तो चला, अब सरोज के लिए सोचने वाला तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई नहीं रहा।" अपनी दूसरी पत्नी और उनके बच्चों के लिए उन्होंने क्या व्यवस्था की, यह मैं ठीक नहीं जानता। पर अनिला के हाथ में अपने जमा किये हुए करीब साढ़े सात हजार रुपये चुपचाप दे गये थे। कहा था, "इन रुपयों को ब्याज पर लगानें की जरूरत नहीं—नकद खर्च करके इससे तुम सरोज की पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था कर देना।"

इस घटना से मुझे थोड़ी हैरानी हुई। मेरे ससुर मात्र बुद्धिमान हों ऐसा नहीं, वे विज्ञ भी थे। अर्थात् वे आवेगवश कुछ नहीं करते थे, हिसाब से चलते थे। इसलिए अपने लड़के को पढ़ा-लिखाकर आदमी बनाने का भार यदि किसी पर सौंपना उचित था तो वह मेरे ही ऊपर था। इस विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं था। पर उनकी लड़की उनके दामाद से अधिक योग्य है, यह धारणा उनकी कैसे बनी यह तो नहीं कह सकता। पर रुपये-पैसे के मामले में मुझे यदि खूब खरा नहीं जानते तो फिर मेरी पत्नी के हाथों इतने सारे नकद रुपये नहीं दे सकते थे। असल में, वे विक्टोरिया-युग के फिलिस्टाइन थे, मुझे अन्त तक पहचान नहीं पाये।

मन-ही-मन गुस्से में मैंने पहले सोचा था, इस बारे में मैं कोई बात नहीं करूंगा। बात की भी नहीं। विश्वास था, अनिला को ही पहले बात करनी होगी, इस विषय में मेरे शरणापन्न हुए बिना उसके लिए दूसरा कोई उपाय नहीं, और अनिला भी जब मेरी सलाह के लिए मेरे पास नहीं आयी तब सोचा, शायद उसे साहस नहीं हो रहा है।

आखिर एक दिन बातों-ही-बातों में पूछा, "सरोज की पढ़ाई-लिखाई का क्या कर रही हो?"

अनिला बोली, "मास्टर रखा है, स्कूल भी जा रहा है।"

मैंने संकेत दिया, सरोज को सिखाने का जिम्मा मैं स्वयं लेने को राजी हूं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आजकल विद्या शिक्षा की जो सब नयी पद्धतियां निकली हैं उनमें से एक उसे समझाने की चेष्टा की। अनिला ने हां या ना कुछ भी नहीं कहा। इतने दिनों बाद मुझे पहली बार सन्देह हुआ कि अनिला मुझे श्रद्धा नहीं करती। मैंने कॉलेज पास नहीं किया, संभवतः इसी से वह सोचती है, पढ़ाई-लिखाई के विषय में परामर्श देने की क्षमता या अधिकार मेरा नहीं है। इतने दिन उसे सौजनिकी अभिव्यक्तिवाद और रेडियो तरंग के विषय में जो कुछ बताता रहा हूं अवश्य ही अनिला उसका कुछ भी मूल्य नहीं समझ पायी है। उसने शायद सोचा है सेकण्ड क्लास का विद्यार्थी भी इसमें ज्यादा जानता है। क्योंकि मास्टर के हाथों कान-खिंचाई के पेंच-पेंच में विद्याएं कसकर उनके मन में बैठ जाती हैं। गुस्सा होकर मन-ही-मन बोला, "विद्या-बुद्धि ही जिनकी प्रधान-सम्पत्ति है, उन्हें महिलाओं के पास अपनी योग्यता प्रमाणित करने की आशा छोड़ देनी चाहिए।"

संसार में अधिकांश बड़े-बड़े जीवन-नाट्य पर्दे के पीछे ही जमा होते रहते हैं, पंचमांक के अन्त में वह पर्दा अचानक ही उठ जाता है। मैं जब अपने द्वैतों को लेकर बर्ग्सां के तत्त्व ज्ञान और इब्सन के मनस्तत्त्व की आलोचना कर रहा था तब सोचा था, अनिला की जीवन-यज्ञ वेदी पर शायद कोई अग्नि ही नहीं प्रज्ज्वलित हुई है। किन्तु, आज जब उस अतीत की ओर मुड़कर देखता हूं तब स्पष्ट देखता हूं कि सृष्टिकर्ता आग में तपाकर हथौड़ी से ठोककर जीवन की प्रतिमा तैयार करते हैं, अनिला के मर्मस्थल में वे खूब सजग थे। वहां एक छोटे भाई, बड़ी बहन और एक सौतेली मां के समावेश में नित्य ही एक घात-प्रतिघात की लीला चल रही थी। पुराण के वासुकी जिस पौराणिक पृथ्वी को थामे हुए हैं वह पृथ्वी स्थिर है। किन्तु, संसार में जिस कन्या को वेदना की पृथ्वी वहन करनी होती उसकी वह पृथ्वी पल-पल में नये आघातों से तैयार होती जा रही है। उस चालू व्यथा के बोझ को छाती पर लिए जिसे घर-गृहस्थी के छोटे-मोटे मामलों के बीच से प्रतिदिन चलना होता है उसके अन्तर की बात अन्तर्यामी को छोड़कर कौन पूरी तरह समझेगा। कम-से-कम मैंने तो कुछ भी नहीं समझा है। कितने उद्वेग, अपमानित किये जाने के कितने प्रयास, पीड़ित स्नेह की कितनी अन्तर्गूढ़ व्याकुलता, मेरे इतने पास निस्तब्धता के अन्तराल में मथित हो उठी थी, जिसे मैं जान ही नहीं पाया। मैं जानता कि जिस दिन द्वैत दल के भोज का दिन उपस्थित होता उस दिन का उद्योग पर्व ही अनिला के जीवन का प्रधान पर्व था। आज भली प्रकार समझ पा रहा हूं परम व्यथा के भीतर से ही इस संसार में वह छोटा भाई ही दीदी का सर्वाधिक अन्तरतम हो उठा था। सरोज के पालन-पोषण के विषय में मेरे परामर्श और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सहायता को अनावश्यक जान उनके उपेक्षा करने से मैंने उस ओर ताका तक नहीं, उनका कैसे चल रहा है, इस बारे में भी किसी दिन पूछा तक नहीं।

इस बीच हमारी गली के पहले नम्बर मकान में एक सज्जन आये। यह मकान उस समय के प्रसिद्ध धनी महाजन उद्धव बड़ाल के समय का बना हुआ था। उसके बाद की दो पीढ़ियों में उस वंश का धन-जन प्रायः निःशेष हो आया, दो-एक विधवाएं शेष हैं। वे यहां नहीं रहतीं, इसलिए यह मकान जीर्णावस्था में ही है। बीच-बीच में विवाहादि के काम से इस मकान को कोई-कोई कुछ दिनों के लिए किराया लेते, बाकी समय में इतने बड़े घर के लिए किरायेदार प्रायः नहीं मिलते। अब की बार जो आये, मान लिया जाय कि उसका नाम सितांशु मौली है और वे नरोत्तमपुर के जमींदार हैं।

मेरे मकान के ठीक बगल में ही अचानक इतने बड़े एक आविर्भाव को मैं शायद जान ही नहीं पाता। क्योंकि कर्ण जैसे एक सहज वर्म को शरीर पर धारण कर पृथ्वी पर आये थे, मेरा भी वैसा ही एक विधि दत्त सहज वर्म है। वह है मेरी स्वाभाविक अन्यमनस्कता। मेरा यह वर्म बड़ा मजबूत और मोटा है। इसलिए सामान्यतः दुनिया में चारों ओर जो धक्कम-धक्के, गोलमाल, गाली-गलौज चलते रहते हैं उनसे बचने का उपाय मेरे पास था।

किन्तु आधुनिक समय के बड़े आदमी स्वाभाविक उत्पात से अधिक अस्वाभाविक उत्पात हैं। दो हाथ, दो पैर, एक सिर जिनके हैं वे हैं आदमी; अचानक जिनके कुछ हाथ, पैर, सिर बढ़ गये, वे हुए दैत्य। दिन-रात धमाधम शब्द के साथ वे अपनी सीमा को तोड़ते रहते हैं और अपने बाहुल्य से स्वर्गमर्त्य को असह्य बना देते हैं। उनकी ओर ध्यान न देना असंभव है। जिन पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं और ध्यान दिये बिना भी रहने का उपाय नहीं, वही हैं दुनिया के अस्वास्थ्य। स्वयं इन्द्र तक उनसे भय मानते हैं।

समझा, सितांशु मौली उसी दल के आदमी हैं। अकेला एक व्यक्ति इतना अधिक अतिरिक्त हो सकता है यह मैं पहले नहीं जानता था। हाथी-घोड़ा, लाव-लश्कर लेकर उसने जैसे दस सिर बीस हाथों का दल जमाया हो। इसलिए उसके मारे मेरे सारस्वत स्वर्गलोक का बेड़ा रोज टूटने लगा।

उसके साथ मेरा प्रथम परिचय हमारी गली के मोड़ पर हुआ। इस गली का प्रधान गुण यह था कि मेरे जैसा अनमना व्यक्ति सामने की ओर न ताक, पीछे की ओर ध्यान न दे, दायें-बायें की परवाह किये बिना भी यहां सुरक्षित विचरण कर सकता है। ऐसा कि यहां पथ पर चलते हुए भी मेरे डिथ की कहानी, ब्राउनिंग का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काव्य अथवा हमारे किसी आधुनिक बाङ्गला के कवि की रचना के सम्बन्ध में मन-ही-मन तर्क-वितर्क करते हुए भी अपघात मृत्यु से बचकर चला जा सकता हैं। किन्तु उस दिन ख्वामख्वाह एक प्रचण्ड 'हेंइयो' गर्जन सुनकर पीछे की ओर ताककर देखा, एक खुली बग्घी में जुते विशाल एक जोड़े लाल घोड़े मेरी पीठ पर जैसे गिरे पड़ रहे हों। जिनकी गाड़ी, वे स्वयं गाड़ी हांक रहे थे, बगल में उनका गाड़ीवान बैठा था। बाबू ने बलपूर्वक दोनों हाथों से लगाम खींच रखी थी। मैंने जैसे-तैसे उस संकरी गली की बगल में तम्बाकू की दुकान के निकले हुए कोने को कसकर पकड़े अपने प्राणों की रक्षा की। मैंने देखा मेरे ऊपर बाबू क्रूद्ध हैं। क्योंकि जो असतर्क भाव से गाड़ी हांकते हैं वे असतर्क पदातिक को कैसे भी क्षमा नहीं कर पाते। इसका कारण पहले ही बता चुका हूं। पदातिक के मात्र दो पैर हैं, वह स्वाभाविक मनुष्य है और जो व्यक्ति जोड़ी हांकता या दौड़ता है उसके आठ पैर हैं, वह है दैत्य। अपने इस अस्वाभाविक बाहुल्य द्वारा जगत में उपद्रव मचाता रहता है। दो पैर वाले मनुष्य के विधाता इस आठ पैर वाली आकस्मिकता के लिए तैयार नहीं थे।

स्वभाव के स्वास्थ्यकर नियम से इस अश्वरथ और सारथी सभी को यथासमय भूल जाता। कारण, इस परमाश्चर्य जगत् में ये विशेष याद रखने की चीजें नहीं हैं लेकिन प्रत्येक मनुष्य में जिस मात्रा में गोलमाल करने का स्वाभाविक निर्धारित परिमाण है ये उससे कहीं अधिक जबर दखल किए बैठे हैं। इसलिए, यदि चाहें तो अपने तीसरे नम्बर पड़ोसी को दिनों महीनों तक भूले रह सकते हैं, किन्तु हमारे इस पहले नम्बर पड़ोसी को क्षणभर के लिए भी भूल सकना कठिन है। रात में उनके आठ दस घोड़े अस्तबल की लकड़ी की जमीन पर बिना संगीत के जो ताल ठोकते रहते हैं उससे मेरी नींद पूरी तरह से गड्ढे में गिर पिचक जाती है। उस पर से भोर में उन आठ-दस घोड़ों को आठ-दस सईस जब सशब्द मलते रहते हैं तब सौजन्य की रक्षा करना असंभव हो जाता है। उस पर से उनके ओड़िया-चपरासी, भोजपुरी-चपरासी, उनके पांडे-तिवारी दरबानों का दल कोई भी स्वर संयम या मितभाषिता के पक्षपाती नहीं हैं। इसीलिए कह रहा था, व्यक्ति तो मात्र एक है, किन्तु उसके गोलमाल करने के यंत्र अनेक हैं। यही है दैत्य का लक्षण। ये उसके अपने लिए अशान्तिकर नहीं भी हो सकते हैं। अपने बीस नासारन्ध्रों से खर्राटा भरते हुए शायद रावण की नींद में कोई बाधा न पड़ती हो, किन्तु उसके पड़ोसी की बात जरा सोचकर देखो तो स्वर्ग का प्रधान लक्षण है सीमित सुषमा, दूसरी ओर किसी समय जो दानव द्वारा स्वर्ग की नन्दन शोभा नष्ट की गयी थी उसका प्रधान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लक्षण था अपरिमित। आज उसी अपरिमित दानव ने ही रुपये की थैली को वाहन बना मानव के लोकालय पर आक्रमण किया है। उसकी बगल से आंख बचाकर निकल भी जाना चाहें तो वह चार घोड़े हंकाता गर्दन पर सवार हो जाता है—और ऊपर से आंखें दिखाता है।

उस दिन अपराह्न में मेरे द्वैत लोग तब तक कोई आये नहीं थे। मैं बैठा-बैठा ज्वार-भाटा तत्त्व सम्बन्धी एक पुस्तक पढ़ रहा था, इतने में हमारे मकान की दीवार लांघ दरवाजा पार करते हुए हमारे पड़ोसी की एक स्मारक लिपि झनझन शब्द के साथ दरवाजे के शीशे पर आ पड़ी। वह एक टेनिस की गेंद थी। चन्द्रमा का आकर्षण, पृथ्वी की नाड़ी का चांचल्य, विश्वगीतिकाव्य का चिरन्तन छन्दतत्त्व आदि सब बातें छोड़ स्मरण हो आया कि हमारे एक पड़ोसी हैं और अत्यन्त अधिक होकर हैं, मेरे लिए वे सम्पूर्ण अनावश्यक फिर भी निरतिशय अवश्यम्भावी। दूसरे ही क्षण देखा, मेरा बूढ़ा अयोद्धा चपरासी दौड़ता-हांफता आ पहुंचा। यही मेरा एकमात्र अनुचर है। इसे बुलाने पर नहीं मिलता, आवाजें लगाकर विचलित नहीं कर पाता—दुर्लभता का कारण पूछने पर बतलाता, अकेले आदमी का काम बहुत अधिक है। आज देखा, बिना तकाजे के ही गेंद उठाकर वह बगल के मकान की ओर भागा जा रहा है। खबर मिली, हर एक बार एक गेंद बटोर देने के लिए वह चार पैसे मजूरी पाता है।

मैंने देखा, मात्र मेरे दरवाजे के शीशे ही नहीं टूट रहे हैं या मेरी शान्ति भंग हो रही है, बल्कि मेरे अनुचर-परिचरों के मन भी टूटने लगे हैं। मेरी नगण्यता विषयक अयोद्धा चपरासी की अवज्ञा प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, वह ऐसी अचरज की नहीं, किन्तु मेरे द्वैत संप्रदाय के प्रधान सरदार कन्हाईलाल का मन भी देख रहा हूं बगल के मकान के प्रति उत्सुक हो उठा है। मेरे पर उसकी जो निष्ठा थी, वह उपकरणमूलक नहीं, अन्तःकरणमूलक है, यह जानकर मैं निश्चिन्त था; ऐसे समय एक दिन ध्यान से देखा कि वह मेरे अयोद्धा को लांघकर टेनिस के भागते-गोले को बटोरकर बगल के मकान की ओर दौड़ा जा रहा है। समझा, इस बहाने पड़ोसी से परिचय करना चाहता है। सन्देह हुआ, उसके मन का भाव ठीक ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी के समान नहीं—मात्र अमृत से उसका पेट नहीं भरेगा।

मैं पहले नम्बर की बाबूगीरी पर खूब चुभता व्यंग्य करने की चेष्टा करता। कहता, सज-धज द्वारा मन की शून्यता ढकने की चेष्टा ठीक वैसी ही है जैसे रंगीन बादलों से आकाश को मूंद लेने की दुराशा। जरा-सी हवा से ही बादल छंट जाते हैं, आकाश दिखने लगता है। एक दिन कन्हाईलाल ने प्रतिवाद करते हुए कहा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्यक्ति बिल्कुल खोखला नहीं है, बी॰ ए॰ पास है। कन्हाईलाल खुद बी॰ ए॰ पास है, इसलिए इस डिग्री के खिलाफ कुछ बोल नहीं सका।

पहले नम्बर के प्रधान गुण समूह मुखर हैं। वे तीन-तीन वाद्य बजा सकते हैं—कॉर्नेट, इसराज और चेलो। जब तक इसका परिचय मिलता रहता है। संगीत के सुर के सम्बन्ध में मैं अपने को सुराचार्य मान अहंकार नहीं करता। किन्तु, मेरे विचार में गाना उच्चांग विद्या नहीं है। भाषा के अभाव में मनुष्य जब गूंगा था तभी गाने की उत्पत्ति हुई—तब मनुष्य चिन्तन नहीं कर सकता था इसलिए चिल्लाता था। आज भी जो मनुष्य आदिम अवस्था में हैं वे अकारण शोर करना पसन्द करते हैं। किन्तु मैंने देखा, मेरे द्वैत-दल में कम-से-कम चार लड़के ऐसे हैं जो पहले नम्बर से चेलो बज उठते ही गणित सम्बन्धी न्याय शास्त्रीय नव्यतम अध्याय में मन नहीं लगा पाते।

मेरे दल के अनेक लड़के जब पहले नम्बर की ओर झुक रहे थे तभी एक दिन अनिला ने मुझ से कहा, "बगल के मकान में एक उपद्रवी आ जुटा है, अब हम यहां से दूसरे मकान में चले जाएं तो ही अच्छा है।"

मैं बड़ा खुश हुआ। मेरे दल वालों से कहा, "देखा, लड़कियों में कैसी एक सहज बोध-शक्ति होती है इसलिए जो सब वस्तुएं प्रमाण योग से समझी जाती हैं वे सब ये लोग समझ ही नहीं पातीं, किन्तु जिन वस्तुओं का कोई प्रमाण नहीं, वह समझने में इन्हें जरा भी देर नहीं लगती।"

कन्हाईलाल हंसकर बोला, "जैसे पेंचो[1] ब्रह्मदैत्य, ब्राह्मण के चरणों की धूलि का महात्म्य, पति देवता की पूजा का पुण्यफल आदि-आदि।"

मैंने कहा, "नहीं जी, यह देखो न, हम पहले नम्बर के ठाट-बाट को देखकर स्तम्भित हो गये हैं जबकि अनिला उसके ठाट-बाट से नहीं घबरायी है।"

अनिला ने दो-तीन बार घर बदलने की बात कही। मेरी भी इच्छा थी किन्तु कलकत्ते की गली-गली में मकान ढूंढ़ते फिरने का अध्यवसाय मेरे में नहीं था। अन्त में एक दिन अपराह्न में देखा, कन्हाईलाल और सतीश पहले नम्बर में टेनिस खेल रहे हैं। उसके बाद जनश्रुति सुनी कि पहले नम्बर के संगीत-मजलिस में यति और हरेन में से एक बॉक्स हारमोनियम बजाता है और दूसरा बाएं पर संगत करता है और अरुण ने वहां कॅमिक गीत गाकर खूब प्रतिष्ठा पायी है। मैं इन्हें पांच-छः वर्षों से जानता हूं, परन्तु इनमें उतने सारे गुण हैं, इसका मुझे सन्देह भी नहीं था।

---

1. पंचानन्द नाम के कल्पित अपदेवता, जिसके आक्रमण से बच्चों में धनुरोग हो जाता है, ऐसा विश्वास है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विशेषतः मैं जानता था, अरुण के मुख्य शौक का विषय है तुलनामूलक धर्मतत्त्व। वह हास्य रस के गीत में उस्ताद है, यह कैसे समझ पाता।

सच्ची बात कहूं, मैं इस पहले नम्बर की मुंह से जितनी भी अवज्ञा क्यों न करूं पर मन-ही-मन ईर्ष्या करता था। मैं चिन्तन कर सकता हूं, विचार कर सकता हूं, सब वस्तुओं का सार ग्रहण कर सकता हूं, बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान कर सकता हूं—मानसिक सम्पद में सितांशु मौली को मेरे समकक्ष समझकर तुलना करना असंभव है। पर फिर भी इस व्यक्ति से मैंने ईर्ष्या की है। क्यों इस बात को यदि खोलकर कहूं तो लोग-बाग हंसेंगे। सुबह सितांशु एक दुर्दान्त घोड़े पर चढ़कर घूमने निकलता—किस आश्चर्य में डाल देले वाले नैपुण्य से लगाम खींचकर इस जानवर को वह वश में करता। इस दृश्य को मैं रोज ही देखता और सोचता रहता। 'काश, यदि मैं इसी प्रकार अनायास घोड़ा हांककर जा सकता।' पटुत्व नाम की वह वस्तु जो मेरे में बिल्कुल नहीं थी, उस पर मेरा एक बड़ा भारी गोपन लोभ था। मैं गाने का सुर अच्छी तरह नहीं समझता, किन्तु खिड़की से कितने ही दिन छिपकर देखा है कि सितांशु इसराज बजा रहा है—उस वाद्य यंत्र पर उसका एक बाधाहीन सौन्दर्यमय प्रभाव मुझे आश्चर्य रूप से मनोहर जान पड़ता। मुझे लगता, वाद्य यंत्र जैसे प्रेयसी नारी के समान उसे प्यार करता—उसने अपना सारा सुर जैसे स्वेच्छा से उसके हाथों बेच दिया हो। माल-असबाव, घर-द्वार आदमी-जानवर सभी पर सितांशु का यह सहज प्रभाव एक भारी ऐश्वर्य का विस्तार करता। यह चीज अनिर्वचनीय है, मैं इसे नितान्त दुर्लभ माने बिना नहीं रह पाता। मैं सोचता, दुनिया में कुछ भी प्रार्थना करना इस व्यक्ति के लिए अनावश्यक है, सब कुछ स्वयं ही इसके पास आ पहुंचेगा, इस इच्छा से जहां भी कहीं बैठेगा, वहीं इसका आसन बिछा हुआ है।

इससे जब एक-एक करके मेरे द्वैतों से कई एक पहले नम्बर के यहां टेनिस खेलने, कॉर्नेट बजाने लगे, तब मैं स्थान परित्याग के सिवाय इन लुब्धों के उद्धार के अन्य उपाय खोज नहीं सका। दलाल ने आकर खबर दी कि मन माफिक अन्य मकान बरानगर, काशीपुर के आस-पास किसी जगह मिल जाएगा। मैं इस पर राजी हुआ। उस समय सुबह के साढ़े नौ बजे थे। पत्नी से तैयार होने को कहने गया। उन्हें न भण्डार में पाया और न रसोईघर में। देखा, सोने के कमरे में खिड़की के सींखचों पर सिर रखे चुपचाप बैठी हैं। मुझे देखते ही उठ खड़ी हुई। मैंने कहा, "परसों ही नये मकान में चल सकेंगे।"

वे बोलीं, "और पन्द्रह दिन सब्र करो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पूछा, "क्यों?"

अनिला बोली, "सरोज का परीक्षाफल जल्दी ही निकलेगा—उसके लिए मन उद्विग्न है, इन कई एक दिन उठाई-धराई करना अच्छा नहीं लग रहा है।"

अन्याय असंख्य विषयों में से यह एक ही विषय है जिस सम्बन्ध में मैंने अपनी पत्नी के साथ कभी आलोचना नहीं की। इसलिए हाल में कुछ दिनों के लिए मकान की बदली मुल्तबी रही। इस बीच खबर मिली, सितांशु जल्दी ही दक्षिण भारत की यात्रा पर निकलेंगे अतः दो नम्बर पर से भारी छाया हट जाएगी।

अदृष्ट नाट्य के पंचमांक का अन्तिम अंश सहसा दीख पड़ा। कल मेरी पत्नी अपने मायके गयी थीं, आज लौटकर उन्होंने अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। वे जानती हैं, आज रात को मेरे द्वैत-दल का पूर्णिमा भोज है। उसी विषय में उनसे परामर्श करने के लिए दरवाजा खटखटाया। पहले उत्तर नहीं मिला, पुकारा, "अनु।" कुछ देर बाद अनिला ने आकर दरवाजा खोल दिया।

मैंने पूछा, "आज रात की रसोई की व्यवस्था सब ठीक है न?"

बिना कोई जवाब दिये सिर हिलाकर बता दिया कि है।

मैंने कहा, "तुम्हारे हाथों बनी मछली की कचौड़ी और विलायती आमड़े की चटनी उन लोगों को बहुत पसन्द है, उसे मत भूलना।"

यह कहकर बाहर आते ही देखा, कन्हाईलाल बैठा है।

मैंने कहा, "कन्हाई, आज तुम लोग जरा जल्दी आ जाना।"

कन्हाई आश्चर्य से बोला, "अच्छा तो क्या आज हमारी सभा होगी?"

मैंने कहा, "अवश्य होगी। सब कुछ तैयार है—मैक्सिम गोर्की की नयी कहानी की पुस्तक, बर्गसां पर रसेल की आलोचना, मछली की कचौड़ी, यहां तक कि आमड़े की चटनी भी।"

कन्हाई भौंचक्का हो मेरे मुंह की ओर ताकता रहा। कुछ देर बाद बोला, "अद्वैत बाबू, मैं कहता हूं, आज रहने दीजिये।"

अन्त में पूछने पर जान पाया कि मेरे साले सरोज ने कल शाम आत्महत्या कर ली है। परीक्षा में वह पास नहीं हो पाया इसलिए सौतेली मां ने उसे बुरी तरह झिड़का था, जिसे वह सह नहीं सका और गले में चादर बांधकर मर गया।

मैंने पूछा, "यह तुमने कहां से सुना?"

उसने बताया, "पहले नम्बर वालों से।" इसका विवरण इस प्रकार है—सन्ध्या समय अनिला के पास जब खबर आयी तब वह सवारी बुलाने की प्रतीक्षा किए बिना ही अयोध्या को साथ ले रास्ते से ही सवारी लेकर अपने मायके पहुंची। रात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

को अयोध्या से यह खबर पाते ही सितांशु मौली ने उसी समय वहां जाकर पुलिस को रफादफा कर श्मशान में उपस्थित रह मृतदेह का दाह-संस्कार करवाया।

मैं उद्विग्न था। तत्क्षण अन्तःपुर गया। मैंने सोचा था कि शायद अनिला ने दरवाजा बन्द कर दिया अपने सोने के कमरे में आश्रय लिया होगा लेकिन अबकी जाकर देखा कि भंडार के सामने के बरामदे में बैठी वह आमड़े की चटनी की तैयारी में लगी है। जब उसके चेहरे को गौर से देखा तब समझा रातोंरात उसका जीवन उलट-पलट गया है। मैंने शिकायत के स्वर में कहा, "मुझे कुछ बताया क्यों नहीं?"

उसने अपनी दो बड़ी-बड़ी आंखों को उठाकर एक बार मेरे मुंह की ओर देखा भर—कुछ बोली नहीं। मैं लज्जा से अत्यन्त छोटा हो गया। यदि अनिला कहती, 'तुम्हें बताने से क्या लाभ होता', तब मेरे लिए जवाब देने को कुछ नहीं रहता। जीवन के ये समस्त विप्लव—संसार के सुख-दुःख—इन्हें लेकर कैसे व्यवहार करना होता है, मैं उसका क्या कुछ भी जानता हूं?

मैंने कहा, "अनिला, यह सब रहने दो, आज हमारी सभा होगी नहीं।"

अनिला आमड़ा के छिलके छीलने की ओर दृष्टि गड़ाये बोली, "क्यों नहीं होगी। जरूर होगी। मैंने इतने कष्ट से सारे आयोजन किये हैं, वह मैं नष्ट होने देना नहीं चाहती।"

मैं बोली, "आज हमारी सभा का काम होना असम्भव है।"

उसने कहा, "तुम्हारी सभा हो या न हो, आज मेरी ओर से यह निमंत्रण है।"

मैंने मन में थोड़े आराम का अनुभव किया। सोचा, अनिला का शौक उतना ज्यादा कुछ नहीं है। मन में आया, कभी उसके साथ बड़े-बड़े विषयों पर बात करता था उसी के फलस्वरूप उसका मन बहुत-कुछ निरासक्त हो गया है। यद्यपि सारी बातें समझने के समान शिक्षा और शक्ति उसमें नहीं थी, पर पर्सनल मैगनैटिज्म नाम की भी कोई चीज अवश्य होती है।

सन्ध्या के समय मेरे द्वैत-दल में दो-चार की कमी हुई। कन्हाई तो आया ही नहीं। पहले नम्बर में जो लोग टेनिस दल में शामिल हुए थे, उनमें से भी कोई आये नहीं, सुना, कल भोर की गाड़ी से सितांशु मौली चले जा रहे हैं, इसी से ये लोग वहां विदाई-भोज खाने गये हैं। इधर अनिला ने आज जैसे भोज का आयोजन किया था वैसा और किसी दिन भी नहीं किया था। यहां तक कि मेरे समान बेहिसाबी आदमी भी यह बात सोचे बिना नहीं रह सका कि अतिरिक्त खर्च किया गया है।

उस दिन भोजनादि के उपरान्त सभा भंग होते-होते रात के एक-डेढ़ बज गये। उसी समय थककर मैं सोने गया। अनिला से पूछा, "सोओगी नहीं?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह गोली, "बर्तन उठाने हैं।"

दूसरे दिन जब नींद टूटी तब करीब आठ बजे होंगे। सोने के कमरे में जिस तिपाई पर अपना चश्मा खोलकर रखता था वहां देखा, चश्मे में नीचे दबी एक कागज की पर्ची है जो अनिला के हाथ की लिखी है, 'मैं जा रही हूं। मुझे ढूंढ़ने की कोशिश न करना। ढूंढ़ने पर पाओगे भी नहीं।'

मैं कुछ समझ नहीं पाया। तिपाई पर एक टिन का बक्सा था—उसे खोलकर देखा, उसमें अनिला के सारे गहने—यहां तक कि उसके हाथों की चूड़ियां, कड़े तक, केवल शांखा और हाथ का लोहे का कड़ा[1] छोड़कर। एक खाने में चाबी का गुच्छा और दूसरे खानों में काग़ज़ी ठोंगे में कुछ रुपये और चवन्नी, दुअन्नी आदि। अर्थात्, महीने के खर्चे से बचाकर अनिला के हाथों में जो कुछ जमा था उसका अन्तिम पैसा तक छोड़ गयी है। एक कापी में बर्तन-असबाब पत्रादि की लिस्ट और धोबी के यहां जो कपड़े गये हैं उन सबका हिसाब था। उसी के साथ दूध वाले और मोदी की दुकान के उधार का हिसाब भी उतारा हुआ है, केवल उसका अपना पता ही नहीं था।

इतना तो समझ में आया, अनिला चली गयी है। सारा घर छान डाला—ससुराल में खोज की—वह कहीं भी नहीं। कोई विशेष घटना घटने पर कैसी विशेष व्यवस्था अपेक्षित है, कभी, उस विषय में मैंने सोचा-विचारा ही नहीं। प्राणों में शून्यता का हाहाकार मचा। सहसा पहले नम्बर की ओर ताककर देखा, उस मकान के दरवाजे-खिड़कियां बन्द हैं। देहरी के पास दरबानजी बैठे हुक्का पी रहे हैं। राजा बाबू भोर होते ही चले गये हैं। जी धक् से रह गया। अचानक समझ में आया, जब मैं एकाग्र मन से नव्यतम न्याय की आलोचना कर रहा था। तब मानव-समाज का पुरातनतम एक अन्याय मेरे मकान में जाल फैला रहा था। फ्लावेयर, टॉलस्टाय, तुर्गनेव आदि बड़े-बड़े कथाकारों की पुस्तकों में जब इस प्रकार की घटनाओं को पढ़ता तब बड़े आनन्द से सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में उसके तत्त्वों का विश्लेषण करके देखता। पर अपने ही घर में ऐसे सुनिश्चित रूप से यह घटना घट सकती है, इसकी कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी।

पहले धक्के को संभालकर मैंने प्रवीण तत्त्वज्ञानी के समान सारे मामले को यथोचित हल्का कर देखने की चेष्टा की। जिस दिन मेरा विवाह हुआ था उस दिन की बात स्मरण कर सूखी हंसी हंसा। सोचा, मनुष्य कितनी आकांक्षा, कितने

1. बंगाल में सोहागिन स्त्रियां शंख के कड़े और बाएं हाथ में लोहे का एक कड़ा पहनती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आयोजन, कितने आवेगों का अपव्यय करता है। कितने दिन, कितनी रातें, कितने वर्ष निश्चिन्त मन से बीत गये, स्त्री नाम की एक सजीव वस्तु अवश्य है, यह जानते हुए भी आंखें बन्द किये हुए था, इतने में आज अचानक आंखें खोलकर देखा, बुदबुदे फूट गये हैं। गये तो गये–कितनी जगत् में सभी तो बुदबुद नहीं। युग-युगान्तर से जन्म-मृत्यु को अतिक्रम कर जो टिकी हुई है ऐसी सारी चीजों को मैंने क्या पहचानना नहीं सीखा।

लेकिन मैंने देखा, इस आघात से अचानक मेरे भीतर का नव्यकाल-ज्ञानी मूर्च्छित हो गया है, और कोई आदिकाल का प्राणी जग उठ भूख से रोता-बिसूरता फिरने लगा है। बरामदे की छत पर टहलते-टहलते, खाली घर में घूमते-घूमते, अन्त में जहां खिड़की पर कितने ही दिन मेरी पत्नी को अकेले चुपचाप बैठे हुए देखा था, एक दिन उसी सोने के कमरे में जाकर पागल के समान सारा समान टटोलने लगा। अनिला के बाल-संवारने के शीशे के दराज को अचानक खींचकर खोलते ही रेशमी लाल फीते में बंधा पत्रों का एक पुलिन्दा निकल आया। चिट्ठियां पहले नम्बर से आयी थीं। मेरा कलेजा जल उठा। एक बार मन में आया सब जला डालें। किन्तु जहां बड़ी वेदना है वहीं पर भारी खिंचाव भी है। इन चिट्ठियों को पूरी तरह न पढ़कर मुझे चैन कहां!

मैंने इन चिट्ठियों को पचासों बार पढ़ा है। पहले चिट्ठी तीन-चार टुकड़ी में फाड़ी गयी है। लगा, पाठिका ने पढ़ते ही उसे फाड़ डाला फिर बड़े जतन से एक कागज पर गोंद से जोड़ रखा है। यह रहा वह पत्र–

"मेरे इस पत्र को बिना पढ़े ही यदि तुम फाड़ डालो तो भी मुझे दुःख नहीं होगा। मुझे जो कुछ कहना है वह तो मुझे कहना ही है।

मैंने तुम्हें देखा है। इतने दिनों से इस पृथ्वी पर आंखें खोलकर घूम रहा हूं, किन्तु देखने जैसा देखना मेरे जीवन की बत्तीस वर्ष की आयु में यह प्रथम बार घटित हुआ। मेरी आंखों पर नींद का पर्दा पड़ा था, तुमने सोने की जादुई सलाई से उसे छू दिया–आज मैंने नव-जागरण के बीच तुम्हें देखा, वह तुम स्वयं अपने सृष्टिकर्त्ता के परम विस्मय का धन हो, उस अनिर्वचनीय तुमको, मुझे जो पाना था पा लिया है, और कुछ नहीं चाहिए, केवल तुम्हारा स्तव तुम्हें सुनाना चाहता हूं। यदि मैं कवि होता तो मेरा यह स्तव पत्र में तुम्हें लिखने की जरूरत नहीं होती, छन्द के बीच से सारे जगत के कण्ठों से उसे प्रतिष्ठित कर जाता। मेरे इस पत्र का तुम कोई उत्तर नहीं दोगी, जानता हूं–किन्तु मुझे गलत न समझना। मैं तुम्हें कोई हानि पहुंचा सकता हूं, ऐसा सन्देह मात्र मन में न रख मेरी पूजा नीरव भाव से ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करो। मेरी इस श्रद्धा की तुम श्रद्धा कर सकती हो इसमें तुम्हारी भी भलाई होगी। मैं कौन हूं, यह लिखने की जरूरत नहीं पर अवश्य ही वह तुम्हारे मन के निकट छिपा नहीं रहेगा।"

ऐसी ही पचीसों चिट्ठियां। इनमें से किसी का उत्तर अनिला की तरफ से गया है, इन चिट्ठियों में उसका कोई निदर्शन नहीं। यदि गया होता तो तभी बेसुरा बज उठता—अथवा तब सोने की सलाई का जादू एकदम चुककर स्तवगान नीरव होता।

किन्तु, यह कैसा आश्चर्य! सितांशु ने जिसे क्षणभर के अवकाश से देखा है आज आठ वर्षों की घनिष्ठता के बाद पराये पत्रों के बीच उसे मैंने प्रथम बार देखा। मेरी आंखों पर पड़ा नींद का पर्दा न जाने कितना मोटा पर्दा है। पुरोहित के हाथों से मैंने अनिला को पाया था, किन्तु उसके विधाता के हाथों से उसे ग्रहण करने का मूल्य मैंने तनिक भी नहीं चुकाया। मैंने अपने द्वैतदल को और नव्यन्याय को उसमें बहुत अधिक बड़ा करके देखा—इसलिए जिसे मैंने किसी दिन भी नहीं देखा, एक निमिष के लिए भी पाया नहीं, उस पर कोई दूसरा यदि अपना जीवन उत्सर्ग कर पाये तो क्या कहकर किसके पास अपनी क्षति की नालिश करूं?

अन्तिम पत्र यह रहा—

"बाहर से मैं तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं जानता, किन्तु अन्तर की ओर से मैं देख रहा हूं तुम्हारी वेदना को। यहां मेरी बड़ी कठिन परीक्षा है। मेरे पुरुष की यह भुजा निश्चेष्ट नहीं रहना चाहती। इच्छा होती है, स्वर्ग-मर्त्य के सारे शासन विदीर्ण कर तुम्हें तुम्हारे जीवन की व्यर्थता से उद्धार कर लाऊं। उसके बाद यह भी लगता है तुम्हारे दुःख में ही तुम्हारे अन्तर्यामी का आसन है। उसके हरण करने का अधिकार मेरा नहीं है। मैंने कल भोर तक की मियाद ले रखी है। इस बीच यदि कोई दैववाणी मेरी इस द्विधा को मिटा दे तो जो हो, कुछ तो होगा। वासना की प्रबल हवा हमारे पथ-प्रदीप को न बुझा दे। इसलिए मैं मन को शान्त रखूंगा—एकाग्र मन से यही मंत्र जप करूंगा कि तुम्हारा कल्याण हो।"

समझ में आ रहा है द्विधा दूर हो गयी—दोनों का पथ एक हो मिल गया है। बीच से सितांशु की लिखी गयी चिट्ठियां मेरी ही हो गयीं—ये सब आज मेरे ही प्राणों के स्तवमंत्र हैं।

कितना समय बीत गया, अब पढ़ना अच्छा नहीं लगता है। एक बार अनिला को किसी तरह देख पाने के लिए मन में ऐसी वेदना उपस्थित हुई कि कैसे भी स्थिर नहीं रह सका। पता लगाने पर मालूम हुआ सितांशु इस समय मसूरी पहाड़ पर है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वहां जाकर सिंताशु को बहुत बार रास्ते पर घूमते देखा, उसके साथ तो अनिला को नहीं देखा। भय हुआ कि कहीं उसे अपनानित कर त्याग तो नहीं दिया। मैं अपने को न रोक पाया, उसके साथ जाकर मुलाकात की। सारी बातें विस्तार से लिखने की जरूरत नहीं है। सितांशु ने कहा, "मैंने उनके पास से अपने जीवन में केवल एक ही पत्र पाया है—देखिए वह यह है।"

यह कहकर सितांशु ने अपनी जेब से मीना किए हुए सोने की कार्ड रखने की छोटी-सी डिबिया खोलकर उसके भीतर से एक कागज का टुकड़ा निकालकर दिया। उसमें लिखा था, "मैं जा रही हूं, मुझे ढूंढ़ने की कोशिश न करना। ढूंढ़ने पर पाओगे भी नहीं।"

वही अक्षर, वही लिखावट, वही तारीख और जिस नीले रंग की चिट्ठी के कागज का आधा हिस्सा मेरे पास है, यह उसी बाकी बचे आधे का टुकड़ा है।

आषाढ़, 1324 (बंगाब्द)
1920 ई॰

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तिनके का संकट[1]

जमींदार के नायब गिरीश बसु के अन्तःपुर में प्यारी नाम की एक दासी काम में लगी। उसकी उम्र भले ही कम थी पर स्वभाव अच्छा था। दूर पराये गांव से आकर कुछ दिन काम करने के बाद ही, एक दिन वह वृद्ध नायब की प्रेम-दृष्टि से आत्मरक्षा के लिए मालकिन के पास रोती हुई हाजिर हुई। मालकिन बोलीं, "बेटी, तू दूसरी जगह चली जा, तू तो अच्छे घर की लड़की है, यहां रहने पर तुझे परेशानी होगी।" यह कहकर चुपचाप कुछ पैसे देकर उसे विदा कर दिया।

पर भागना इतना आसान नहीं था। हाथ में राह-खर्च भी थोड़ा था—इसलिए प्यारी ने गांव में हरिहर भट्टाचार्य महाशय के घर पर आश्रय लिया। उनके समझदार बेटों ने कहा, "बाबूजी, क्यों नाहक विपत्ति मोल ले रहे हैं।" हरिहर ने उत्तर दिया, "विपत्ति स्वयं आकर आश्रय मांगे तो उसे लौटाया नहीं जा सकता, बेटे।"

गिरीश वसु ने साष्टांग दण्डवत करते हुए कहा, "भट्टाचार्य महाशय, आपने मेरी नौकरानी क्यों फुसला ली? घर में काम की बड़ी असुविधा हो रही है।" उत्तर में हरिहर ने दो-चार खरी बातें कड़े स्वर में कहीं। वे सम्मानित व्यक्ति थे, किसी के खातिर कोई बात घुमा-फिराकर कहना नहीं जानते थे। नायब मन-ही-मन पर निकली चींटी के साथ उनकी तुलना करता चला गया। जाते वक्त बड़े आडम्बर के साथ उनकी चरण-धूलि ली।

दो-चार दिनों बाद ही भट्टाचार्य के घर पर पुलिस आ धमकी। गृहस्वामिनी के तकिये के नीचे से नायब की पत्नी के कानों पर एक जोड़ा झुमका मिला। दासी बेचारी चोर प्रमाणित होकर जेल चली गयी। भट्टाचार्य महाशय को अपने देश-प्रसिद्ध दबदबे के जोर पर चोरी के माल के संरक्षण के अभियोग से मुक्ति मिली। नायब ने फिर ब्राह्मण की चरण-धूलि ली। ब्राह्मण ने जाना, उनके अभागिन को आश्रय देने के कारण ही प्यारी पर यह घोर संकट आया। उनके मन में कांटा चुभा रहा। उनके बेटों ने कहा, "जमीन-जायदाद बेचकर कलकत्ता चलें, यहां बड़ी

1. 'उलुखड़ेर विपद' कहानी का अनुवाद। बाङ्ला में 'उलुखड़' का अर्थ है एक तरह की 'घास'।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मुश्किल नजर आ रही है।" हरिहर ने उत्तर दिया, "पैतृक घर मेरे से छोड़ा नहीं जायेगा; भाग्य में बदी होने पर विपत्ति कहां नहीं आती?"

इसी बीच गांव में नायब द्वारा अत्यधिक करवृद्धि की कोशिश में रैयत विद्रोही हो उठी। हरिहर की सारी जमीन माफी की थी, जमींदार से उसका कोई सरोकार नहीं था। नायब ने अपने मालिक को जतलाया, हरिहर ने ही रैयतों को प्रश्रय देकर विद्रोही बना दिया है। जमींदार ने कहा, "जैसे भी हो भट्टाचार्य को ठीक करो।" नायब भट्टाचार्य की चरण-धूलि लेकर बोला, "सामने वाली जमीन परगना की सीमा के अन्तर्भुक्त है, उसे तो छोड़ना होगा।" हरिहर ने कहा, "यह क्या कह रहे हो? वह तो मेरी बहुत दिनों की दान की जमीन है।" हरिहर के आंगन से लगी पैतृक जमीन को जमींदार के परगने के अन्तर्भुक्त बताकर नालिश दायर कर दी गयी। हरिहर बोले, "तब तो इस जमीन को छोड़ना पड़ेगा। मैं तो बुढ़ापे में अदालत में गवाही देने नहीं जा सकूंगा।" उनके बेटों ने कहा, "घर से लगी पैतृक-जमीन ही यदि छोड़नी पड़े तो फिर घर में कैसे टिका जायेगा?"

वृद्ध पैतृक घर के प्राणाधिक मोह में कांपते डग से अदालत के साक्ष्य-मंच पर जाकर खड़े हुए। मुंसिफ नवगोपाल बाबू ने उनकी गवाही को ही साक्षी मान मुकदमा खारिज कर दिया। गांव में भट्टाचार्य के खास रैयतों ने इसे लेकर बड़े धूमधाम से उत्सव समारोह शुरू कर दिया। हरिहर ने जल्दी से उन्हें रोका। नायब ने आकर विशेष आडम्बर के साथ भट्टाचार्य की चरण-धूलि ली और सारी देह और सिर-माथे लगायी और फिर अपील दायर कर दी। वकील लोग हरिहर से पैसा नहीं लेते थे। वे ब्राह्मण को बार-बार आश्वासन देते, इस मुकदमे में हारने की कोई सम्भावना नहीं है। दिन ही क्या कभी रात हो सकती है? यह सुनकर हरिहर निश्चिन्त होकर बैठे रहे।

एक दिन जमींदार की कचहरी में ढाक-ढोल बज उठे। पाठे की बलि के साथ नायब के मकान में काली मैया की पूजा होगी। भला बात क्या है? भट्टाचार्य को खबर मिली कि अपील में उनकी हार हुई है।

भट्टाचार्य ने सिर पीटते हुए वकील से कहा, "बसन्त बाबू, यह आपने क्या किया? मेरी क्या दशा होगी?"

दिन कैसे रात हुई, बसन्त बाबू ने इसका गूढ़ वृत्तान्त इस तरह बतलाया, "हाल ही में जो नये एडिशनल जज होकर आये हैं वे जब मुंसिफ थे तब मुंसिफ नवगोपाल बाबू के साथ उनकी बड़ी खटपट थी। उस समय वे कुछ कर नहीं पाये। आज जजी की कुर्सी पर बैठकर नवगोपाल बाबू की दी हुई राय को देखते ही उसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उन्होंने पलट दिया। इसलिए आप हार गये।"

आकुल हरिहर ने पूछा, "हाईकोर्ट में क्या इसकी कोई अपील नहीं?" बसन्त बाबू ने उत्तर दिया, "जज बाबू ने अपील से फल पाने की सम्भावना तक नहीं छोड़ी है। उन्होंने आपके गवाह पर सन्देह प्रकट किया और विरोधी पक्ष के गवाह का विश्वास किया; हाईकोर्ट में तो गवाह पर विचार नहीं होगा।"

वृद्ध ने आंखों में आंसू भरकर पूछा, "फिर मेरे लिए कोई उपाय?"

वकील बोले, "उपाय तो एक भी नजर नहीं आता।"

दूसरे दिन गिरीश बसु ने लोगों के साथ आकर समारोह के साथ ब्राह्मण की चरण-धूलि ली और जाते हुए उच्छ्वसित गहरी सांस के साथ कहा, "प्रभु, जैसी तुम्हारी इच्छा!"

1307 (बंगाब्द)
1900 ई०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पड़ोसिन

मेरी पड़ोसिन बाल-विधवा है—शरद की ओस से धुली वृन्तच्युत शेफाली के समान। वह किसी वासर कक्ष की फूल शय्या[1] के लिए नहीं, केवल देवपूजा के निमित्त ही उत्सर्ग की हुई है।

मैं मन-ही-मन उसकी पूजा करता। उसके प्रति मेरे मन का जैसा भाव था, उसे पूजा के अतिरिक्त किसी अन्य सहज शब्द द्वारा प्रकट करना नहीं चाहता—दूसरे के पास तो नहीं ही, उसके पास भी नहीं।

मेरा अन्तरंग प्रिय बन्धु नवीन माधव, वह भी कुछ नहीं जानता था। इस प्रकार अपने इस गंभीरतम आवेग को गोपन रख निर्मल बनाये हुए था, इसमें मैं कुछ गर्व का अनुभव करता।

किन्तु मन का वेग पहाड़ी नदी के समान अपने जन्म-शिखर पर आबद्ध होकर नहीं रहना चाहता। किसी-न-किसी उपाय से बाहर निकल आने की चेष्टा करता है। सफल न होने पर हृदय में वेदना उत्पन्न करता रहता है। इसीलिए सोच रहा था, कविता में अपने भाव प्रकट करूंगा। पर लेखनी कुण्ठित थी, किसी भी तरह वह अग्रसर होना नहीं चाहती थी।

और आश्चर्य की बात यह थी कि ठीक उसी समय मेरे बन्धु नवीन माधव पर अकस्मात् प्रचण्ड वेग से कविता लिखने की सनक सवार हुई, सहसा ही फट पड़े भूकम्प के समान।

उस बेचारे पर ऐसी दैव-विपत्ति पहले कभी नहीं आयी, अतः वह इस अभिनव आन्दोलन के लिए लेशमात्र भी प्रस्तुत नहीं था। उसके हाथ में तब छन्द-तुक वगैरह कुछ भी मौजूद नहीं था, तो भी वह हतोत्साह नहीं हुआ—यह देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। कविता ने जैसे बुढ़ापे की दूसरी पत्नी के समान उस पर पूरी तरह अधिकार जमा लिया था। नवीन माधव छन्द-तुक सम्बन्धी सहायता और संशोधन के लिए मेरे शरणापन्न हुआ।

---

1. बंगाल में विवाह के तीसरे दिन ससुराल में नवदम्पती का फूलों से सजी शय्या पर प्रथम शयन अनुष्ठान (सुहागरात)।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कविता की विषयवस्तु नयी नहीं थी, लेकिन पुरानी भी नहीं अर्थात् उसे चिर-नूतन भी कहा जा सकता है, चिर-पुरातन कहने में भी कोई हर्ज नहीं। प्रियतमा के प्रति प्रेम की कविता। मैंने उसे एक धक्का देते हुए हंसकर पूछा, "क्यों रे, यह कौन है?"

नवीन ने हंसकर कहा, "अभी तक खोज नहीं पाया हूं।"

नवीन स्रष्टा की सहायता के काम में मुझे बड़े आराम का अनुभव हुआ। नवीन की काल्पनिक प्रियतमा के प्रति मैंने अपने रुद्ध आवेग का प्रयोग किया। चूजे के अभाव में मुर्गी जैसे बत्तख के अण्डे पाकर भी पंख को फैला सेती है, ठीक वैसे ही अभागा मैं नवीन माधव के भावों को अपने हृदय की गर्माहट से दबाकर बैठ गया। अनाड़ी के लेख को इतने प्रबल वेग से सुधारने लगा कि करीब पन्द्रह आने वह मेरा ही लेख हो गया।

नवीन विस्मय के साथ कहता, "ठीक यही बात मैं कहना चाहकर भी कह नहीं पाता था। पर तुम्हारे पास ये सारे भाव कहां से आ जुटते हैं?"

मैं कवि के समान उत्तर देता, "कल्पना से। कारण सत्य नीरव कल्पना ही घटना मुखर है। सत्य-भाव स्रोत को पत्थर के समान दबाये रखती है, कल्पना ही उसके पथ को उन्मुक्त कर देती है।"

नवीन ने गंभीर चेहरा बनाकर कुछ सोचकर कहा, "ऐसा ही तो देख रहा हूं। ठीक ही है।" फिर कुछ देर तक सोचने के बाद बोला, "ठीक, बिल्कुल ठीक।"

पहले ही कह चुका हूं कि मेरे प्रेम में एक कातर संकोच था, इसीलिए अपनी कलम से किसी भी तरह कुछ नहीं लिख पाया। नवीन को पर्दे की तरह बीच में रखकर ही मेरी लेखनी मुंह खोल सकी। ये लेख मानो रस से भरपूर गर्मी से फटने लगे।

नवीन बोला, "यह तो तुमने ही लिखा है। तुम्हारे नाम से प्रकाशित करूं?"

मैंने कहा, "खूब कहा। यह तो तुम्हारा ही लेख है, मैंने तो बस थोड़ा-बहुत बदल भर दिया है।" क्रमशः नवीन की भी यही धारणा बनी।

ज्योतिर्विद जैसे नक्षत्रोदय की प्रतीक्षा में आकाश की ओर तकता रहता है मैं भी वैसे ही बीच-बीच में अपने पास के घर की खिड़की की ओर तकता, मैं इस बात से अस्वीकार नहीं कर सकता। भक्त का वह व्याकुल दृष्टिपात कभी-कभी सार्थक भी होता। उस कर्मयोगता ब्रह्मचारिणी के सौम्य मुखश्री से शान्त स्निग्ध ज्योति प्रतिबिम्बित हो क्षणभर में मेरे समस्त चित्तक्षोभ का दमन कर देती।

लेकिन उस दिन सहसा ही यह क्या देखा! मेरे चन्द्रलोक में अभी भी अग्नि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उत्पात शेष है। वहां के जन्य शून्य समाधिमग्न गिरिगुफा में समस्त वह्निदाह क्या अभी भी सम्पूर्ण निर्वापित नहीं हुई है।

उस दिन वैशाख की दोपहरी में आकाश के उत्तर-पूर्व कोने में बादल सघन होते जा रहे थे। उस आसन्न झंझा के मेघ विच्छुरित रुद्र दीप्ति में मेरी पड़ोसिन अपनी खिड़की पर अकेली खड़ी थी। उस दिन उसकी शून्य निविष्ट घनी काली दृष्टि में कैसी सुदूर प्रसारित सघन वेदना दिखी।

है, अभी मेरे उस चन्द्रलोक में ताप है। अभी भी वहां गर्म निःश्वास बह रही है। देवता के लिए मनुष्य नहीं, मनुष्य के लिए देवता हैं। उसकी उन दोनों आंखों की विशाल व्याकुलता उस दिन की उस आंधी के आलोक में व्यग्र पक्षी के समान उड़ चली थी। स्वर्ग की ओर नहीं, मानव हृदय नीड़ की ओर।

उस उत्सुक आकांक्षा उदीप्त दृष्टिगत को देखने के बाद से अशान्त चित्त को स्थिर बनाये रखना मेरे लिए दुस्साध्य हुआ। तब केवल दूसरे की अपक्व कविता संशोधित कर तृप्ति नहीं मिली—एक किसी प्रकार का कार्य करने की चंचलता जगी।

तब मैंने संकल्प किया कि बंगाल में विधवा-विवाह का प्रचलन करने के लिए अपने पूरे प्रयत्नों का प्रयोग करूंगा। केवल भाषण और लेख ही नहीं, आर्थिक सहायता के लिए भी आगे बढ़ा।

नवीन मेरे साथ तर्क करने लगा; उसने कहा, "चिर वैधव्य में एक पवित्र शान्ति है, एकादशी की क्षीण ज्योत्स्नालोकित समाधि भूमि के समान एक विराट रमणीयता है, विवाह की संभावना मात्र से ही क्या वह नष्ट नहीं हो जाती है?"

ऐसी कवित्व भरी बातें सुनते ही मुझे क्रोध आता। दुर्भिक्ष में जो व्यक्ति सूखकर मर रहा है, आहार-पुष्ट व्यक्ति उसके पास यदि खाद्य की स्थूलता के प्रति घृणा प्रकट करता हुआ फूल की सुगन्धि और पक्षी के गान से मुमूर्षु का पेट भराना चाहे तो वह कैसा लगेगा।

मैंने क्रोध से कहा, "देखो नवीन, कलाकार यह कहता है, दृश्य की दृष्टि से टूटे पुराने घर का भी अपना एक सौन्दर्य है। लेकिन उस घर को केवल चित्र की दृष्टि से देखने से नहीं चलता, उसमें रहना पड़ता है, इसलिए कलाकार जो भी कहे, उसकी मरम्मत की आवश्यकता है। वैधव्य को लेकर तुम तो दूर से अच्छी खासी कविता लिखना चाहते हो, लेकिन उसमें एक आकांक्षापूर्ण मानव हृदय अपनी विचित्र वेदना को लेकर वास कर रहा है, उसे स्मरण रखना हमारा कर्त्तव्य है।"

सोचा था, नवीन माधव को किसी प्रकार भी दल में खींच नहीं सकूंगा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसलिए उस दिन कुछ अधिक गर्माहट से बातें की थीं। पर अचानक देखा, मेरे भाषण के अन्त में नवीन माधव ने एक गहरी उसांस भरकर मेरी सारी बातें मान लीं, बाकी और भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातों के कहने का असवर ही नहीं दिया।

एक सप्ताह के बाद नवीन ने आकर कहा, "तुम यदि सहायता करो तो मैं एक विधवा से विवाह करने के लिए तैयार हूं।"

मैं इतना खुश हुआ कि मैंने नवीन को गले लगा लिया और बोला, "इसमें जितने रुपये खर्च होंगे, मैं दूंगा।"

तब नवीन ने अपना इतिहास बताया।

तब मैं जान पाया कि उसकी प्रियतमा काल्पनिक नहीं है। कुछ दिनों से एक विधवा स्त्री से वह दूर से ही प्रेम करता, किसी के सामने उसने यह प्रकट नहीं किया है। जिस मासिक पत्रिका में नवीन, उर्फ मेरी कविताएं प्रकाशित होतीं वे पत्रिकाएं यथास्थान पहुंच जातीं। कविताएं बेकार नहीं गयीं। बिना मिले चित्त-आकर्षण का एक उपाय मेरे बन्धु ने ढूंढ़ निकाला।

पर नवीन का कहना है कि उन्होंने किसी षड्यंत्र से ये सारे कौशल नहीं अपनाए हैं। यहां तक कि उन्हें विश्वास था कि विधवा पढ़ना नहीं जानती। वे विध ावा के भाई के नाम पत्रिका बिना हस्ताक्षण किये, बिना मूल्य के ही भेज देते। यह केवल मन को सान्त्वना देने का एक पागलपन मात्र था। मन में आता, देवता के उदेश्य से पुष्पांजलि अर्पित की गयी, वे जानें या न जानें, ग्रहण करें या न करें।

अनेकानेक बहानों से विधवा के भाई के साथ नीवन ने जो मैत्री स्थापित कर ली थी, नवीन कहते हैं, उसमें भी कोई उदेश्य नहीं था। जिससे प्यार किया जाता है उसके निकटवर्ती परिजनों का संग भी मधुर लगता है।

आखिरकार उसके भाई के कठिन रोग को लेकर बहन के साथ कैसे मुलाकात हुई, वह लम्बी बात है। कवि के साथ कविता आधारभूत विषय का प्रत्यक्ष परिचय होने से कविता के सम्बन्ध में बहुत सारी आलोचनाएं हो गयी हैं। आलोचना केवल कुछ छपी कई एक कविताओं में बद्ध हो ऐसा भी नहीं।

हाल ही में मेरे साथ तर्क में परास्त होकर नवीन उस विधवा से मिलकर विवाह का प्रस्ताव दे बैठा था। पहले-पहले तो किसी तरह सहमति नहीं मिली। तब नवीन ने मेरे मुंह से निकली सारी युक्तियों का प्रयोग कर और उसके साथ अपनी आंखों के दो-चार बूंद पानी मिलाकर उसे बिल्कुल हरा दिया। अब विधवा के अभिभावक फूफा कुछ रुपये चाह रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मैंने कहा, "अभी लो।"

नवीन बोला, "इसके अतिरिक्त विवाह के बाद पहले पांच-छः महीने तक पिताजी अवश्य ही मासिक खर्चा-पानी देना बन्द कर देंगे, तब तक के लिए हम दोनों का खर्चा जुटाना होगा।"

मैंने बिना कुछ बोले चेक काट दिया। कहा, "अब उनका नाम तो बताओ। मेरे साथ जब कोई होड़ ही नहीं, तब परिचय देने में कोई भय नहीं। मैं तुम्हारी देह छूकर सौगन्ध खाता हूं कि मैं उनके नाम पर कविता नहीं लिखूंगा, और अगर लिखी भी तो उनके भाई को न भेजकर तुम्हारे पास भेज दूंगा।"

नवीन बोला, "अरे, उसके लिए मैं डरता नहीं। विधवा विवाह की लज्जा से वे अत्यन्त कातर हैं, इसीलिए तुमसे उनके बारे में आलोचना करने के लिए उन्होंने बहुत मना कर दिया था। लेकिन अब ढक रखना मिथ्या है। वे तुम्हारी ही पड़ोसिन हैं, उन्नीस नम्बर घर में रहती हैं।

मेरा हत्पिण्ड अगर लोहे का बायलर होता तो एक बारगी धमाके से फट जाता। मैंने पूछा, "विधवा विवाह में उनकी अस्वीकृति नहीं है?"

नवीन ने हंसकर कहा, "हाल में तो नहीं।"

नवीन बोला, "क्यों, मेरी वे कविताएं तो कुछ बुरी नहीं हैं।"

मैंने कहा, "केवल कविता पढ़कर ही वे मुग्ध हैं।"

किसे धिक्कारा?

उन्हें, न अपने को और न विधाता को?

लेकिन धिक्कार है!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पितामह

नयनजोड़ के जमींदार किसी समय बाबू के नाम से विख्यात थे। उस जमाने में बाबूपने का आदर्श बहुत आसान नहीं था। जिस प्रकार इस समय राजा, रायबहादुर का खिताब प्राप्त करने के लिए नाच, घुड़दौड़ एवं सलामी सिफारिश का श्राद्ध करना पड़ता है, उस समय साधारण जनता से बाबू की उपाधि प्राप्त करने के लिए भी दुःसाध्य तपस्या करनी पड़ती थी।

नयनजोड़ के अपने बाबू किनारी फाड़कर ढाका के कपड़े पहनते, क्योंकि किनारी की कर्कशता से उनका सुकोमल बाबूपन कष्ट पाता। वे लाख रुपये से बिल्ली के बच्चे का विवाह करते और कहा जाता है कि एक बार किसी उत्सव के उपलक्ष्य में उन्होंने रात को दिन करने की प्रतिज्ञा करके असंख्य दीपक जलाकर सूर्य की किरणों के अनुकरण में ऊपर से सच्ची चांदी की जरी बरसाई थी।

इससे सभी समझ सकते हैं कि उस समय बाबुओं का बाबूपन वंशानुक्रम से स्थायी नहीं हो पाता था। अनेक बाती वाले दीपक के समान वे अपना तेल आप ही थोड़े से समय की धूमधाम में चुका देते।

अपने कैलाशचन्द्र रायचौधरी उसी ख्यातनामा नयनजोड़ के एक बुझे हुए (बिगड़े हुए) बाबू थे। इन्होंने जब जन्म ग्रहण किया था तब तेल दीपक की पैंदी में ही रह गया था; इनके पिता की मृत्यु होने पर नयनजोड़ का बाबूपना कुछ साधारण श्राद्ध-शान्ति-कार्यों में अपनी अन्तिम ज्योति दिखाकर अचानक बुझ गया। सारी धन-सम्पत्ति कर्ज़े में बिक गई—जो थोड़ी-सी बची रही उससे पुर्खों की ख्याति की रक्षा करना असंभव था।

इसीलिए कैलाश बाबू नयनजोड़ को त्यागकर पुत्र को साथ लेकर कलकत्ता आकर रहने लगे—पुत्र भी अपनी एकमात्र कन्या को छोड़कर इस हतगौरव संसार का परित्याग करके परलोक सिधार गया।

हम कलकत्ता में उनके पड़ोसी थे। हमारा इतिहास उनसे एकदम विपरीत था। मेरे पिता ने अपने प्रयत्न से धन कमाया था; वे कभी भी घुटने से नीचे तक की धोती नहीं पहनते थे, कौड़ी-कौड़ी का हिसाब रखते थे; और बाबू की उपाधि पाने की उन्हें कोई लालसा न थी। इसके लिए, मैं उनका एकमात्र पुत्र, उनके प्रति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कृतज्ञ हूं। मैंने जो लिखना-पढ़ना सीखा और बिना प्रयत्न के अपने शरीर और मान की रक्षा के लिए उपयोगी यथेष्ठ धन पाया है, उसी को मैं परम गौरव की बात समझता हूं—शून्य भाण्डार में पैतृक बाबूपन के उज्ज्वल इतिहास की अपेक्षा लोहे के संदूक में कम्पनी के पैतृक कागज मुझे बहुत ज्यादा मूल्यवान प्रतीत होते हैं।

शायद इसी कारण जब कैलाश बाबू अपने पूर्व गौरव की बिगड़ी हुई बैंक के नाम लम्बा-चौड़ा चैक काटते तो मुझे अत्यन्त असह्य लगता। मुझे लगता, मेरे पिता ने अपने हाथ से अर्थोपार्जन किया है, इसलिए कैलाश बाबू शायद मन-ही-मन मेरे प्रति अवज्ञा का अनुभव करते हैं। मैं क्रोधित होता और सोचता कि अवज्ञा के योग्य कौन है? जो जीवनभर कठोर त्याग स्वीकार करके नाना प्रलोभनों का अतिक्रमण करके, लोगों के मुख की तुच्छ ख्याति की अवहेलना करके, अविश्रांत एवं सतर्क बुद्धि-चातुर्य द्वारा समस्त प्रतिकूलताओं और बाधाओं पर विजय प्राप्त करके, समस्त अनुकूल अवसरों पर अपना अधिकार कर चांदी के एक-एक स्तर से सम्पत्ति के एक ऊंचे पिरामिड का अकेले अपने हाथों से निर्माण कर गए हैं, वे घुटनों के नीचे धोती नहीं पहनते थे, इसी कारण वे छोटे आदमी थे, ऐसा नहीं है।

उस समय मेरी अवस्था कम थी, इसीलिए मैं इस प्रकार का तर्क करता, नाराज हो जाता। अब अवस्था बढ़ गई है, अब सोचता हूं, इसमें हानि भी क्या है। मेरे पास तो विपुल सम्पत्ति है, मुझे किस बात का अभाव है। जिसके पास कुछ नहीं है, वह यदि अहंकार करके सुखी हो ले, इसमें मेरा तो रत्तीभर भी नुकसान नहीं है, उल्टे उस बेचारे को सान्त्वना मिल जाती है।

यह भी पता चला कि मुझे छोड़कर और कोई कैलाश बाबू के ऊपर क्रोध नहीं करता था। क्योंकि दुनिया में इतना अधिक निरीह आदमी नहीं मिलता। काम-काज में, सुख-दुःख में पड़ोसियों के साथ उनका पूरा सहयोग रहता था। आबालवृद्ध किसी से भी भेंट होते ही वे हंसते हुए सबसे स्नेहपूर्वक बात करते—जहां भी जिसका जो कोई था उन सबका कुशल-संवाद पूछकर ही उनकी शिष्टता विश्राम पाती। इसलिए किसी से भी उनकी भेंट होते ही एक खूब लम्बी प्रश्नोत्तरमाला की सृष्टि हो जाती—अच्छे हो! शशी अच्छा है? हमारे बड़े बाबू अच्छे तो हैं? सुना था मधु के पुत्र को ज्वर आ गया था, वह अब अच्छा तो है! हरिचरण बाबू को बहुत समय से नहीं देखा, वे अस्वस्थ तो नहीं हो गए! तुम्हारे राखाल का क्या समाचार है? घर में सब लोग अच्छे तो हैं।" इत्यादि।

वे बड़े ही साफ-सुथरे व्यक्ति थे। कपड़े-लत्ते अधिक नहीं थे, किन्तु मिरजई, चादर, कुर्त्ता, यहां तक कि बिस्तर पर बिछने वाली एक पुरानी दुतई, तकिये का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खोल, एक छोटी दरी—इन सबको वे अपने हाथों धूप देकर, झाड़कर, रस्सी में लटकाकर, तहाकर, अर्गनी पर टांगकर बड़े कायदे से रखते थे। जब भी वे दिखाई पड़ते तभी लगता, मानो वे सुसज्जित होकर तैयार बैठे हैं। थोड़े बहुत सामान से ही उनका घर-द्वार जगमगाता रहता। ऐसा लगता, मानो उनके पास और भी बहुत-कुछ है।

नौकर के अभाव में वे बहुत बार कमरे का दरवाजा बंद करके अपने हाथ से बड़े ढंग से धोती चुनियाते और चादर और कुर्ते की आस्तीन बड़े यत्न और परिश्रम से चुन्नट करके रखते। उनकी लम्बी-चौड़ी जमींदारी और बहुमूल्य धन-सम्पत्ति लुप्त हो चुकी थी, किन्तु एक बहुमूल्य गुलाबपाश, इत्रदान, सोने की एक रकाबी, चांदी का एक हुक्का, एक बहुमूल्य शाल और पुरानी चाल के जामे की एक जोड़ी और पगड़ी को उन्होंने बड़े यत्न से दरिद्रता के मुंह में जाने से बचाया था। कोई भी अवसर आने पर यह सब सामान निकल आता और नयनजोड़ के जगद्विख्यात बाबुओं के गौरव की रक्षा हो जाती।

इधर कैलाश बाबू मिट्टी के माधो होने पर भी अपनी बातों में जो अहंकार व्यक्त करते वह मानो पूर्व-पुरुषों के प्रति अपने कर्त्तव्य का अनुभव करके ही करते थे; सभी लोग उसको बढ़ावा देते और विशेष विनोद का अनुभव करते।

मुहल्ले के लोग उनको दादाजी कहते और उनके यहां हमेशा बहुत से लोगों का समागम रहता; किन्तु दैन्यावस्था के कारण कहीं उनका तम्बाकू का खर्च बहुत न बढ़ जाय इसलिए प्रायः मुहल्ले का कोई-न-कोई दो-एक सेर तम्बाकू खरीद लाता और उनसे कहता, "दादाजी, एक बार परीक्षा करके तो देखो जरा, गया का बढ़िया तम्बाकू हाथ लगा है।"

दादाजी दो-एक कश खींचकर कहते, "खूब है भई, तम्बाकू खूब है!" और इसी बहाने साठ-पैंसठ रुपये तोले के तम्बाकू का किस्सा छेड़ देते; और पूछते कि किसी को उस तम्बाकू का स्वाद लेकर देखने की इच्छा तो नहीं है।

सभी जानते थे कि यदि कोई इच्छा प्रकट कर दे तो अवश्य ही चाबी का पता न लगेगा या फिर बहुत ढूंढ़ने के बाद पता चलेगा कि पुराना नौकर गणेश का बच्चा कहां क्या रखता है इसका कोई ठिकाना नहीं—गणेश भी बिना प्रतिवाद किये समस्त अपवाद स्वीकार कर लेगा। इसलिए सभी एक स्वर में उत्तर देते, "दादाजी, कोई जरूरत नहीं, वह तम्बाकू हमसे बर्दाश्त नहीं होगा, हमारे लिए यही अच्छी है।"

इतना सुनते ही दादाजी दुबारा कुछ न कहकर किंचित् मुस्कराते। सबके विदा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होते समय वे सहसा बोल उठते, "खैर, इसे छोड़ो, तुम लोग मेरे यहां भोजन कब करोगे, बताओ तो भई!"

त्यों ही सब बोल पड़ते, "देखा जाएगा, फिर किसी दिन तय कर लेंगे।" दादाजी, "यही अच्छा है, थोड़ा पानी बरस जाय, ठण्डक हो जाय, नहीं तो इस गरमी में भारी भोजन बेकार है।"

जब बरसात आती तब कोई भी दादाजी को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण न कराता, किन्तु बात चलने पर सभी कहते, "जब तक बूंदाबांदी बन्द न हो तब तक मजा नहीं आयेगा। किराए के छोटे घर में रहना उनके लिए शोभा नहीं है और कष्ट भी होता है, इस बात को उनके बन्धु-बान्धव उनके सामने स्वीकार करते, लेकिन कलकत्ता में खरीदने योग्य घर खोज लेना कितना कठिन है, इस विषय में भी किसी को कोई सन्देह नहीं था—यही नहीं, आज छह-सात वर्ष से खोज करने पर भी कोई मुहल्ले वाला भाड़े पर लेने योग्य एक बड़ा मकान तक नहीं पा सका—आखिर दादाजी कहते, "जो हो, भाई, तुम लोगों के पास हूं, मेरे लिए यही सुख है, नयनजोड़ में बड़ा घर तो पड़ा ही है, किन्तु वहां क्या मन टिकता है?"

मेरा विश्वास है, दादाजी भी जानते थे कि उनकी अवस्था सभी जानते हैं और जब वे भूतपूर्व नयनजोड़ को वर्तमान का रूप देकर दिखावा करते और जब और लोग भी उसमें उनका साथ देते तब वे मन-ही-मन समझ लेते कि परस्पर की यह छलना केवल एक-दूसरे के प्रति सौहार्द के कारण है।

किन्तु मुझे बड़ी चिढ़ छूटती। छोटी अवस्था में दूसरों के निरीह गर्व का भी दमन करने की इच्छा होती है और हजारों गुरुतर अपराधों की तुलना में मूर्खता ही सबसे अधिक असह्य प्रतीत होती है। कैलाश बाबू सचमुच निर्बोध नहीं थे, काम-काज में उनकी सहायता और सलाह की भी अपेक्षा करते। किन्तु नयनजोड़ का गौरव-वर्णन करने में उनको सहज औचित्य का तनिक भी ध्यान नहीं रहता था। सबके स्नेह और मनोरंजन के पात्र होने के कारण कोई भी उनकी किसी भी असम्भव बात का प्रतिवाद नहीं करता था, इससे वे अपनी बात की सीमा की रक्षा नहीं कर पाते थे। दूसरे व्यक्ति भी जब हंसी-मजाक में अथवा उनको सन्तुष्ट करने के लिए नयनजोड़ के कीर्ति-कलाप के सम्बन्ध में अस्वाभाविक मात्रा में अत्युक्ति का प्रयोग करते तो वे बिना किसी हिचकिचाहट के सब कुछ मान लेते और स्वप्न में भी सन्देह न करते कि कोई दूसरा इन सब बातों में लेशमात्र भी अविश्वास प्रकट कर सकता है।

कभी-कभी मेरी इच्छा होती कि वृद्ध जिस मिथ्या गढ़ के सहारे रह रहे हैं और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सोचते हैं कि वह चिरस्थायी है, उस दुर्ग को ही सबके सामने दो तोपों से उड़ा दूं। किसी पक्षी को डाल पर आराम से बैठा देखकर शिकारी की इच्छा होती है, उसे गोली से उड़ा दे, पहाड़ के ऊपर किसी पतनोन्मुख पत्थर को पड़े देखकर बालक के मन में आता है, ठोकर मारकर उसे लुढ़का दे—जो वस्तु प्रतिक्षण अब गिरी, तब गिरी की स्थिति में है और किसी एक चीज से अटकी रहती है, उसको गिरा देने में ही मानो उनकी सम्पूर्णता निहित है और उससे दर्शक के मन को भी सन्तोष मिलता है। कैलाश बाबू की असत्य बातें जितनी ही सरल थीं उतनी ही दुर्बल थीं, वे सत्य की बन्दूक के निशाने के ठीक सामने इस प्रकार छाती फुलाकर नाचने लगतीं कि उनको तुरन्त नष्ट कर डालने के लिए मन में इच्छा उत्पन्न हो जाती—मैं केवल अत्यधिक आलस्य और सर्वजन-सम्मत प्रथा का अनुसरण करने के कारण ही इस कार्य में हस्तक्षेप न करता।

अतीत के अपने मनोभावों का विश्लेषण करने पर जो कुछ याद आता है उससे लगता है कि कैलाश बाबू के प्रति मेरे आन्तरिक द्वेष का और एक गूढ़ कारण था। उसको कुछ विस्तार से कहना आवश्यक है।

बड़े आदमी का पुत्र होने पर भी मैंने उचित अवस्था में एम. ए. पास किया है, यौवनावस्था में भी किसी प्रकार की कुसंगति और कुत्सित आमोद में योग नहीं दिया, और अभिभावकों की मृत्यु के बाद स्वयं मालिक होने पर भी मेरे स्वभाव में किसी प्रकार की विकृति नहीं आई है। तिस पर शक्ल-सूरत ऐसी कि यदि मैं उसे अपने मुंह से सुन्दर कहूं तो अहंकार हो सकता है, किन्तु झूठी प्रशंसा नहीं होगी।

इसलिए बंगाल में घटकों के बाजार में मेरी कीमत बहुत ज्यादा है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इस बाजार में मैं अपनी पूरी कीमत वसूल करके रहूंगा, मैंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की थी। धनी पिता की परम रूपवती विदुषी एकमात्र कन्या आदर्श रूप में मेरी कल्पना में विराज रही थी।

दस हजार, बीस हजार रुपये दहेज का प्रस्ताव लेकर देश-विदेश से मेरे विवाह-सम्बन्ध आने लगे। मैं अविचलित चित्त से तराजू पर रखकर उनकी योग्यता को तोलकर देख लेता था, मुझे कोई भी अपने बराबर योग्य प्रतीत नहीं हुई। अंत में भवभूति की उक्ति के समान मेरी धारणा बन गई कि—

हो सकता है, कभी कोई मेरे समान उत्पन्न हो
समय असीम है, वसुधा विपुल है।

किन्तु वर्तमानकाल में और क्षुद्र बंगदेश में वह असंभव दुर्लभ पदार्थ उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हुआ है या नहीं, इसमें संदेह है।

कन्या-भार से ग्रस्त लोग प्रायः नाना प्रकार से मेरी स्तव-स्तुति करते हुए विविधोपचारों से मेरी पूजा करने लगे। कन्या चाहे पसन्द हो या न हो, यह पूजा मुझे बुरी नहीं लगती थी। बढ़िया लड़का मानकर कन्याओं के पिताओं द्वारा अपनी इस पूजा को मैं अपना उचित प्राप्य समझता था। शास्त्रों में लिखा है कि देवता वर चाहे दें या न दें, यथाविधि पूजा न मिलने पर बड़े क्रुद्ध हो जाते हैं। नियमित रूप से पूजा पाते हुए मेरे मन में भी वैसा ही अत्युच्च देव-भाव पैदा हो गया था।

पहले ही कह चुका हूं, दादाजी की एक पौत्री थी। उसको अनेक बार देखा था, किन्तु कभी भी रूपवती समझने का भ्रम नहीं हुआ। अतएव उससे विवाह की कल्पना भी मेरे मन में नहीं उठी। किन्तु यह अच्छी तरह सोच रखा था कि कैलाश बाबू किसी आदमी की मार्फ़त अथवा स्वयं पौत्री के अर्घ्य चढ़ाने की मंशा से मेरी पूजा-वंदना करने आयेंगे, क्योंकि मैं अच्छा लड़का था। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

मैंने सुना, मेरे किसी मित्र से उन्होंने कहा था कि नयनजोड़ के बाबू कभी किसी विषय में आगे बढ़कर किसी से प्रार्थना नहीं करते—कन्या चाहे चिरकुमारी रह जाय, तो भी वे उस कुल-प्रथा को भंग नहीं कर पायेंगे।

सुनकर मुझे बड़ा क्रोध बहुत दिनों तक मेरे मन में बना रहा—केवल भला लड़का होने के कारण चुप रह गया।

जिस प्रकार वज्र के साथ बिजली रहती है, उसी तरह मेरे स्वभाव में क्रोध के साथ कौतुकप्रियता जुड़ी हुई थी। वृद्ध को केवल पीड़ा पहुंचाना मुझसे संभव न होता—किन्तु एक दिन सहसा मन में एक ऐसी कौतुकपूर्ण योजना आई कि उसे कार्यान्वित करने का लोभ संवरण न कर सका। पहले ही कह चुका हूं कि वृद्ध को संतुष्ट करने के लिए अनेक व्यक्ति तरह-तरह की मिथ्या बातों की सृष्टि करते थे। मुहल्ले के एक पेंशनभोगी डिप्टी मजिस्ट्रेट प्रायः कहते, "दादा, छोटे लाट के साथ जब भी भेंट होती है वे नयनजोड़ के बाबुओं का समाचार पूछे बिना नहीं रहते—साहब कहते हैं कि बंगाल में बर्दवान के राजा और नयनजोड़ के बाबू—यथार्थ में केवल यही दो पुराने और सुप्रतिष्ठित वंश हैं।" द.दा बहुत खुश होते और भूतपूर्व डिप्टी बाबू से भेंट होते ही अन्यान्य कुशल समाचारों के साथ पूछते, "छोटे लाट साहब अच्छे हैं! उनकी मेम साहब अच्छी हैं? उनके लड़के-लड़कियां सब अच्छी तरह हैं?" यह भी इच्छा प्रकट करते कि वे शीघ्र ही एक दिन साहब से मिलने जायेंगे। किन्तु भूतपूर्व डिप्टी को निश्चित पता था कि नयनजोड़ की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विख्यात चार घोड़े वाली बग्घी के तैयार होकर दरवाजे पर पहुंचते-पहुंचते अनेक छोटे और बड़े लाट बदल जायेंगे।

एक दिन प्रातःकाल मैंने जाकर कैलाश बाबू को अलग बुलाकर धीरे से कहा, "दादा, कल लेफ्टिनेंट गवर्नर के स्वागत-समारोह में गया था, उनके नयनजोड़ के बाबुओं की बात छेड़ने पर मैंने कहा कि नयनजोड़ के कैलाश बाबू तो कलकत्ता में ही हैं, यह सुनकर छोटे लाट इतने दिन तक मिलने न आ सकने के कारण बड़े दुखी हुए—कहा कि आज ही दोपहर को वे छिपकर तुमसे मिलने आयेंगे।"

और कोई होता तो बात की असंभवता समझ जाता एवं और किसी के सम्बन्ध में कहीं जाने पर कैलाश बाबू भी उस बात पर हंसते, किन्तु अपने से सम्बन्धित होने के कारण इस बात पर उनको लेशमात्र भी अविश्वास नहीं हुआ। सुनकर जितने प्रसन्न हुए उतने ही अधीर हो उठे—कहां बैठाना होगा, क्या करना होगा, किस प्रकार अभ्यर्थना करनी होगी—किस प्रकार नयनजोड़ का गौरव बचेगा—वे कुछ भी नहीं समझ पा रहे थे। इसके अतिरिक्त वे अंग्रेजी नहीं जानते, बात कैसे करेंगे, यह भी तो एक समस्या थी।

मैंने कहा, "इसके लिए चिन्ता न करें, उनके साथ एक दुभाषिया रहता है; किन्तु छोटे लाट साहब की यह खास इच्छा है कि और कोई उपस्थित न रहे।"

मध्याह्न में जब मुहल्ले के अधिकांश लोग ऑफिस चले गए एवं शेष लोग द्वार बन्द करके निद्रामग्न थे तभी एक बग्घी कैलाश बाबू के घर के सामने आकर रुकी।

बिल्ला लगाए चपरासी ने उनको खबर दी, "छोटा लाट साहब आया।" दादाजी पुराने जमाने में प्रचलित सफेद पाजामा और पगड़ी बांधे हुए तैयार थे; अपने पुराने नौकर गणेश को भी उन्होंने अपनी धोती, चादर, कुर्त्ता पहनाकर ठीक-ठाक कर रखा था। छोटे लाट के आगमन का समाचार सुनते ही हांफते-हांफते कांपते हुए दौड़कर द्वार पर जा उपस्थित हुए—और कमर झुकाकर बार-बार सलाम करते हुए अंग्रेज वेशधारी मेरे एक प्रिय समवयस्क को अन्दर ले गए।

वहां कुर्सी पर उनका एकमात्र बहुमूल्य शाल बिछा हुआ था, उसी के ऊपर कृत्रिम छोटे लाट को बैठाकर उन्होंने उर्दू भाषा में एक अति विनीत लम्बी वक्तृता का पाठ किया और नजर के रूप में सोने की रकाबी में रखकर बड़े कष्ट से रक्षित अपनी कुल-क्रमागत अशर्फियों की एक माला रखी। पुराना सेवक गणेश गुलाब-जल का पात्र और इत्रदान लिये उपस्थित था।

कैलाश बाबू बारंबार क्षोभ प्रकट करने लगे कि वे अपने नयनजोड़ वाले घर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में हुज़ूर बहादुर की पद-धूलि पड़ने पर उनके आतिथि-सत्कार का यथासाध्य यथोचित आयोजन कर सकते थे, कलकत्ता में वे प्रवासी हैं—यहां वे जलहीन मीन के समान हर काम में असमर्थ हैं, इत्यादि।

मेरे मित्र बड़ा-सा हैट पहने अत्यन्त गम्भीर भाव से अपना सिर हिलाने लगे। अंग्रेजी कायदे के अनुसार ऐसे स्थलों पर सिर पर टोप न रखने की प्रथा है, किन्तु मेरे मित्र ने पकड़े जाने के भय से यथासम्भव छिपे रहने के प्रयत्न में टोप नहीं उतारा। कैलाश बाबू एवं उनके गर्वान्ध प्राचीन भृत्य को छोड़कर और सभी क्षणभर में बंगाली व्यक्ति के इस छद्मवेश को पहचान लेते।

दस मिनट तक सिर हिलाकर मेरे मित्र उठ खड़े हुए और पूर्व निश्चय के अनुसार चपरासियों ने सोने की रकाबी समेत अशर्फियों की माला, कुर्सी पर से वह शाल एवं भृत्य के हाथों से गुलाब-जल छिड़कने का पात्र और इत्रदान लेकर उस छद्मवेशी की गाड़ी में रख दिया—कैलाश बाबू ने सोचा कि यही छोटे लाट की प्रथा होगी। मैं पास के एक कमरे में छिपा देख रहा था और हंसी के आवेग को रोकने के मारे मेरी छाती फटने की नौबत आ गई थी।

अन्त में और किसी भी प्रकार न रह सकने पर मैं भागकर थोड़ी ही दूर पर जाकर एक कमरे में पहुंचा—और वहां हंसी का उच्छ्वास उन्मुक्त करते ही सहसा देखा कि एक बालिका कुर्सी पर उल्टी पड़ी फूट-फूटकर रो रही है।

मुझे अचानक कमरे में प्रवेश करके हंसते देखकर वह हड़बड़ाकर कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गई और अश्रु-रुद्ध कण्ठ में रोष का गर्जन भरकर मेरे मुख पर सजल विशाल कृष्णचक्षुओं से सुतीक्ष्ण विद्युत्-वर्षा करती हुई बोली, "मेरे दादाजी ने तुम लोगों का क्या बिगाड़ा है—क्यों तुम लोग उनको ठगने आए हो—क्यों आए हो तुम लोग"—बस, आगे और कोई बात न निकली—उसका गला भर आया, साड़ी से मुंह ढककर रो उठी।

मेरी हंसी का आवेग कहां चला गया? मैंने जो काम किया था उसमें मजाक के अलावा और कुछ था, अभी तक मेरे दिमाग में भी न आया था—अचानक देखा, मैंने अत्यन्त कोमल स्थान पर अत्यन्त कठोर आघात किया है; सहसा मेरे द्वारा किये काम की वीभत्स निष्ठुरता मेरे सामने देदीप्यमान हो उठी—मैं लज्जा एवं अनुताप से लात खाए कुत्ते के समान कमरे से चुपचाप बाहर निकल आया। वृद्ध ने मेरे प्रति क्या अपराध किया था! उनके निरीह अहंकार ने तो कभी किसी प्राणी को कष्ट नहीं पहुंचाया। मेरे अहंकार ने क्यों इस तरह हिंसा की मूर्ति धारण कर ली?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसके अतिरिक्त और एक सम्बन्ध में आज सहसा मेरी आंखें खुल गईं। इतने दिन तक मैं कुसुम को किसी अविवाहित पात्र के प्रसन्न दृष्टिपात की प्रतीक्षा में संरक्षित रखे हुए बिकने वाले पदार्थ के समान देखता था–सोचता था, मैंने इसे पसन्द नहीं किया इसीलिए यह पड़ी हुई है। दैवयोग से जिसको पसन्द आयगी यह उसी की होगी। आज देखा, इस घर के कोने में पड़ी इस बालिका-मूर्ति के अंतराल में एक मानव-हृदय है। अपने निजी सुख-दुःख; अनुराग-विराग को लिये उसका अपना अन्तःकरण एक ओर अज्ञेय अतीत और दूसरी ओर अकल्पनीय भविष्य नामक दो अनन्त रहस्य-राज्यों की ओर पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ है। जिस व्यक्ति के पास हृदय है वह क्या केवल दहेज के रुपयों और आंख-नाक की लम्बाई-चौड़ाई नापकर पसंद कर लेने योग्य है।

रातभर नींद नहीं आई। दूसरे दिन तड़के ही मैं वृद्ध के समस्त अपहृत बहुमूल्य द्रव्यों को लेकर चोर की भांति चुपके से दादाजी के घर पहुंचा–इच्छा थी, किसी से कुछ भी न कहकर चुपके से सब कुछ नौकर के हाथों दे आऊंगा।

नौकर को न देख पाने के कारण इधर-उधर कर रहा था कि इसी बीच पास के कमरे में वृद्ध के साथ बालिका की बातचीत सुनाई पड़ी। बालिका मीठे स्नेहपूर्ण स्वर में पूछ रही थी, "दादाजी, कल लाट साहब ने तुमसे क्या कहा?" पितामह अत्यन्त हर्षित चित्त लाट साहब के शब्दों में प्राचीन नयनजोड़ के वंश का विस्तृत काल्पनिक गुणानुवाद बिठा रहे थे। बालिका उसे सुनकर बड़ा उत्साह प्रकट कर रही थी।

वृद्ध अभिभावक के प्रति मातृ-हृदय से पूर्ण इस छोटी बालिका की सकरुण छलना से मेरे नेत्रों में अश्रु छलछला आए। मैं बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा–अंत में पितामह के अपनी कहानी समाप्त करके चले जाने पर मैं प्रतारणा द्वारा अपहृत उस माल को लेकर बालिका के पास उपस्थित हुआ और चुपचाप उसके सामने रखकर चला आया।

आजकल की प्रथा के अनुसार और रोज तो वृद्ध को देखने पर किसी प्रकार का अभिवादन नहीं करता था–आज उनको प्रणाम किया। वृद्ध ने अवश्य ही अपने मन में सोचा होगा कि पिछले दिन उनके यहां छोटे लाट के आगमन से ही उनके प्रति मेरी सहज भक्ति का उद्रेक हुआ है। वे अत्यन्त पुलकित होकर शतमुख से छोटे लाट की कहानी गढ़कर कहने लगे–मैंने भी बिना किसी प्रतिवाद के उसमें योग दिया। बाहर के जिन लोगों ने सुना, उन्होंने आद्योपान्त इस बात को गप्प समझा और हंसी-हंसी में वृद्ध की सारी गाथा का समर्थन कर गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सबके उठ जाने पर मैंने अत्यन्त सलज्ज विनीत भाव से वृद्ध से एक प्रस्ताव किया। मैंने कहा, "यद्यपि नयनजोड़ के बाबुओं के साथ हमारी वंश-मर्यादा की कोई तुलना नहीं हो सकती, तथापि–"

प्रस्ताव समाप्त करते ही वृद्ध ने आलिंगन करते हुए मुझे छाती से लगा लिया और आनन्दित होकर कहने लगे, "मैं गरीब हूं–मेरा ऐसा सौभाग्य होगा यह मैं नहीं जानता था, भाई–मेरी कुसुम ने बड़ा पुण्य किया है जो आज तुम हाथ आए," कहते-कहते वृद्ध के नेत्रों से अश्रु झरने लगे।

वृद्ध ने आज पहली बार अपने महिमान्वित पूर्वपुरुषों के प्रति अपना कर्त्तव्य भुलाकर यह स्वीकार किया कि वे गरीब हैं, और यह भी स्वीकार किया कि मुझे प्राप्त करके नयनजोड़-वंश की गौरव-हानि नहीं होगी। मैं जिस समय वृद्ध को अपमानित करने के लिए षड्यंत्र कर रहा था उस समय वे मुझे परम सत्पात्र समझकर एकनिष्ठ भाव से मेरी कामना कर रहे थे।

❑ ❑ ❑

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE